CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

निषद् का अनुभव

प० ६२५२
वा० वि० पीठ,
पुस्तकालय:
मू० ३।—

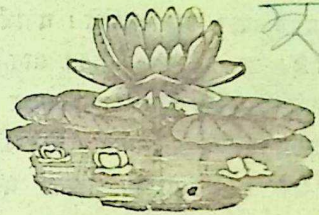

आशुक आरचित

त्रय ब्रह्मनिष्ठ डॉ० क्षितीशचन्द्र, चक्रवर्ती

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अभ्यास अनुरूप फल

मनुष्य केवल संस्कार द्वारा परिचालित पशु की तरह नहीं है। उत्तम संस्कार को बढ़ाने के लिए सत्संग की सहायता से प्रबल प्रयत्न करना चाहिये। अन्यथा संस्कार द्वारा परिचालित पशु योनि की पुनरावृत्ति बनी रहेगी।

व्यवहार माया की नीतिरूप प्रारब्ध द्वारा सञ्चालित होता है। सत्संग के लिए प्रबल प्रयत्न करना चाहिये। धनार्जन और सुख प्रारब्ध कर्माधीन है। सत्संग और शास्त्रजनित ज्ञान से दीर्घकाल अभ्यस्त संसार ज्ञान की अधिक बलवत्ता ही निरन्तर आत्मस्वरूप के भान और आनन्द स्वरूप के अनुभव में प्रतिबन्ध है। परोक्ष आत्मज्ञान से अपरोक्ष संसारभ्रम अत्यन्त बलवान है। संसारभ्रम के प्रबल संस्कार द्वारा परोक्ष ज्ञान का मन्द संस्कार तिरोहित हो जाता है। मनुष्य चिरकाल पर्यन्त जैसा अभ्यास करता है वह उसका ही अनुभव करता है। अतः जगत वास्तव में चिदानन्दस्वरूप का प्रकाश मात्र है। इस प्रकार भावना दृढ़ होने पर वास्तव चिदानन्द स्वरूप का प्रत्यक्ष अनुभव होता है। और भ्रान्तिकल्पित दुःखरूपता शान्त हो जाती है।

—उपदेशसंग्रह से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उपनिषद् का अनुभव

(तैत्तिरीय और छान्दोग्य)

(वेदान्त-343)

लेखक

श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ डॉ० क्षितीशचन्द्र चक्रवर्ती

एम० ए० डी० फिल० बी० एल०

संस्थापक—अद्वैत संस्था

कुलपति—अखिल अद्वैत विश्वविद्यालय, नेपाल

प्रकाशक

अञ्चलप्रमुख डिल्लुप्रसाद सापकोटा

अञ्चलउपप्रमुख गञ्जसिंह गुरुङ्ग

अद्वैत संस्था गण्डकी अञ्चल कार्यालय पोखरा (नेपाल)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रकाशक :

अञ्चलप्रमुख डिल्लुप्रसाद, सापकोटा

अञ्चलउपप्रमुख गङ्गसिंह गुरूङ्ग

अद्वैत संस्था, गण्डकी अञ्चल कार्यालय, पोखरा, (नेपाल)

आश्विन कृष्ण पञ्चमी

वै० सं० २०३०

प्रथम संस्करण : १००० प्रति

© सर्वाधिकार सुरक्षित : अद्वैत संस्था नेपाल

मूल्य ३/५०

मुद्रक :

आर्यभूषण प्रेस

कह्यांघाट, वाराणसी-२२१००१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रस्तावना

मानव-जीवन की सफलता दुःख की आत्यन्तिक निवृत्ति एवं अविनाशी आनन्दप्राप्ति में है। आत्मज्ञान द्वारा ही उक्त उद्देश्य की पूर्ति संभव है। आत्मज्ञान का अनिवार्य प्रमाण वेदान्त शास्त्र है। उपनिषद् (वेद का ज्ञानभाग) ही वेदान्त नाम से विख्यात है। ब्रह्मसूत्र एवं गीताशास्त्र (न्याय तथा स्मृति) उपनिषद का परिस्फुट करते हैं।

परमाराध्य श्रीगुरुदेव प्राच्य पाश्चात्य सर्वविद्याकुशल सुप्रसिद्ध शिक्षाविद् हैं। आपने पच्चीसों वर्षतक उपनिषद शास्त्रों पर गम्भीर विचार किया। निरन्तर अनुसन्धान में रत रहने के कारण आप भारतीय दर्शन के उच्चतम सिद्धान्त जीवन्मुक्तिपद पर समासीन हुए।

वाराणसी से प्रकाशित होने वाली सिद्धान्तपत्रिका में आप स्वर्गीय गंगाशंकर मिश्र एवं दुर्गादत्त त्रिपाठी आदि विद्वानगण के हार्दिक अनुरोध पर आध्यात्मिक लेख देते रहे। उन्हीं में से ये दो लेख "तैत्तिरीय" एवं "छान्दोग्य" पुस्तकाकार में प्रकाशित किये गये हैं। उपनिषद जैसे गम्भीर शास्त्र को प्रश्नोत्तर की प्रणाली से सरस ढंग में इन लेखों में स्पष्ट किया गया है। इनको पढ़कर कौन ऐसा व्यक्ति होगा जो कि अपने वास्तव सच्चिदानन्द स्वरूप को पाकर कृत कृत्य न बन सकेगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तन, मन, धन का पर्वाह न कर इन हिन्दी ग्रन्थों के प्रकाशन-कार्य में अत्यन्त उत्साह के साथ संलग्न रहने वाले तारक अद्वैत विश्वविद्यालय रिडो थोर्गा नेपाल के स. उपकुलपति श्री डिल्लीराज सरस्वती को अद्वैत संस्था की ओर से धन्यवाद दिया जाता है।

ऐसे ग्रन्थरत्न को प्रकाशित कर अद्वैत संस्था को समर्पित करने वाले स्वनामधन्य प्रकाशक महोदय श्रीडिल्लुप्रसाद सापकोटा जी एवं गञ्जसिंह गुरुङ्ग धन्यवाद के पात्र हैं।

गत वि० सं० २०३० जेष्ठ मास में नेपालकी राजधानी काठमाडौं में हुये ज्ञानमहायज्ञ में अद्वैत संस्था की ओर से आगामी हरिद्वार वाह्लवर्षीय कुंभ मेले के पर्व पर एक पण्डाल खड़ाकर अद्वैत संस्था का समारोह कराने का निर्णय किया गया है। उसके लिए श्रीगुरुदेव द्वारा लिखित हिन्दी ग्रन्थों के प्रकाशन के सन्दर्भ में यह ग्रन्थरत्न मुमुक्षुगण के समक्ष उपलब्ध हुआ है।

अन्त में स्वयं विमुक्त बनकर बन्धन प्राप्त मुमुक्षुजन को मोक्ष प्रदान करने के लिए निरन्तर परिश्रमरत रहने वाले अनन्त-विभूषित ब्रह्मनिष्ठ श्रीगुरुदेव के श्रीचरणों में आज नेपाल एवं भारत के हम सब मुमुक्षुगण अत्यन्त नतमस्तक हैं।

आश्विन कृष्ण पञ्चमी
वि० सं० २०३० साल
वाराणसी

विनीत
ज्ञानेश्वर सरस्वती
(देवेश्वर)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आवश्यक आरक्षित

आशीर्वचन

अद्वैत संस्था के भक्त द्वारा प्रकाशित पुस्तक पुस्तिकाओं की यह विशेषता होती है कि उनमें सम्पूर्ण द्वैत प्रपञ्च का श्रुति, युक्ति और विद्वद्अनुभव द्वारा निरसन पूर्वक केवल परिशिष्ट स्वयं प्रकाशमान अद्वैत निजी स्वरूप का प्रतिपादन किया जाता है। प्रसङ्गवश ईश्वरतत्व और मनुष्य के प्रारब्ध में अधिष्ठित ईश्वर स्वरूप का निरूपण भी उपलब्ध होता है। ईश्वर स्वरूप का निरूपण केवल द्वैत प्रपञ्च के आत्यन्तिक निरसन के लिये है। इस प्रकार जब निर्गुण ईश्वर की भक्तिपूर्वक जगत् निरस्त होता है, तब उस निरसन की अवधिरूप से ब्रह्म से अभिन्न निर्गुण ईश्वररूप मुमुक्षु का निजी वास्तव स्वरूप स्वयं प्रकट हो जाता है। इस प्रकार ब्रह्म की अभिव्यक्ति केवल निश्चल (अखण्डाकार) बुद्धि में संभव होती है।

अद्वैत संस्था के भक्त द्वारा प्रकाशित अद्वैत-तत्व-प्रतिपादक पुस्तक पुस्तिकाओं के प्रकाशन में हृदयतः मेरा आशीर्वाद है। इसप्रकार अद्वैत-विषयक पुस्तक प्रकाशन से भगवान पशुपतिनाथ प्रसन्न होकर प्रकाशक के हृदय में स्थित पारमार्थिक अन्धकार को विनष्ट कर देते हैं और भक्त ईश्वरविज्ञानी बन जाता है।

लक्ष्मी-निवास
२२ कांग्रेस एक्जिबिशन रोड
कलकत्ता—१७

—क्षितीशचन्द्र चक्रवर्ती

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

असाधारण व्यक्तित्व : डॉ० चक्रवर्तीजी

क्या कोई शास्त्र है ? जिसे आपने नहीं देखा हो, क्या कोई शंका है ? जिसका समाधान आपसे न हो सके, क्या कोई व्यक्ति है ? जिनके सामने जाकर उसने असीम शान्ति का अनुभव न कर लिया हो। यद्यपि आपकी आज जितनी प्रसिद्धि आवश्यक थी उतनी नहीं हो सकी है तथापि जन्मजात आस्तिक्यसंस्कार सन्पन्न हिन्दूगण आपकी शरण लिये विना कैसे अपने को मोक्ष-सुख से वञ्चित रख सकेंगे ?

आप नेपाल में २५ साल तक रहे। अतएव हजारों आप के नेपाली विद्वान, अपठित, धनी, गरीब, छोटे, बड़े सभी वर्ग के लोग शिष्य वन गये हैं। नेपाल के आध्यात्मिक गौरव को उज्जीवित एवं चिरस्थायी वनाने में आप ने ऐतिहासिक महत्ता प्राप्त की है। जगद्गुरु शंकराचार्य को जिस तरह आज विश्व में सम्मान प्राप्त है उसी तरह आप को प्राप्त होगा, इस विषय में जितना कहा जाय उतना ही थोड़ा है।

हम जिनके पास श्रीचक्रवर्तीजी का एक भी ग्रन्थ उपलब्ध हो, उनसे सादर हार्दिक अनुरोध करेंगे कि वे उपेक्षा दृष्टि को छोड़कर सांप्रदायिक पूर्वाग्रह से दूर रहकर उस ग्रन्थ को पढें तव श्री गुरुदेव क्या हैं स्वयं पता लग जायेगा। हम निस्संकोच कहेंगे कि आज विश्व में ऐसा व्यक्तित्व अन्यत्र नहीं होगा। आप से एक वार भी जिज्ञासा लेकर कोई मिले और दर्शन करे तो हमारा कथन स्वतः प्रमाणित होगा।

धर्मनिष्ठ
डिल्लीराज सरस्वती

२०३०।६।१
तारक भवन रिडी
थोर्गा, नेपाल

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प० ६२५२
वा० वि० पी० पुस्तकालय
मू० ३।-

उपनिषद का अनुभव

तैत्तिरीय उपनिषद

यहाँ ज्ञान या विवेक के सम्बन्ध में प्रश्नोत्तररूप में विचार किया जा रहा है।

प्रश्न—"अच्छा, इस आलोचना का क्या उद्देश्य है।" उत्तर-"मुमुक्षु पुरुष का हित साधन।" प्र०—"ब्रह्मविद्या का अधिकार किस तरह प्राप्त होता है।" उ०—"दर्श, पूर्णमास से लेकर अन्त्येष्टि तक विहित कर्मसमूहों को, अनेक जन्मों में फलाकांक्षा का त्याग करते हुए, सम्पादन करने पर अन्तिम जन्मों में आत्मतत्व की जिज्ञासा या प्रत्यक्प्रवणता उदित होती है। उसके बाद अनेक प्रकार की उपासना द्वारा योगाभ्यास करते हुए परमेश्वर में चित्त की निश्चलता सिद्ध होने पर सावधान अन्तःकरण में परमात्म-विषयक वृत्ति का उदय होना सम्भव होता है।" प्र०—ब्रह्मज्ञान के उपदेश के पहले श्रुति ने शान्तिमन्त्र के पाठ और जप का विधान क्यों किया है।" उ०—इस के द्वारा ब्रह्मविद्या के विघ्न राग, द्वेष आदि समस्त मनोविकार शान्त होकर ज्ञान की सफलता सम्पादित होती है।" प्र०—"संक्षेप में इस ब्रह्मविद्या के विषय में कुछ कहिए।" उ०—"ब्रह्मवेत्ता ब्रह्मात्मरूप को प्राप्त हो जाते हैं।" प्र०—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कृपाकर सब शब्दों का अर्थ स्पष्टरूप से कहिए।" उ०—"सूत्र के विषयसमूह का निर्देश करता हूँ, सुनो। ब्रह्म है ज्ञेय, साक्षात्काररूप मानसिक वृत्तिविशेष का नाम है ज्ञान और जिन्हें साक्षात्कार हुआ है, उनकी ब्रह्मभावप्राप्ति ज्ञान का फल है।" प्र०—"ज्ञातव्य ब्रह्म का लक्षण क्या है?" उ०—"जो सत्य ज्ञान और अनन्त है, वही ब्रह्म है।" प्र०—"ब्रह्म को ही 'सत्य' वस्तु क्यों कहा जा सकता है?" उ०—इन्द्रजाल जैसी माया से उत्पन्न समस्त भूत और भौतिक प्रपञ्च मिथ्या है। मायारूप समस्त कल्पनाओं का अधिष्ठान ब्रह्म ऐन्द्रजालिक पुरुष की तरह अकल्पित होने के कारण सदा ही सत्य है। इसी तरह सब काल और सब अवस्थाओं में नित्य या बाधरहित होने से ब्रह्म को अबाधित सत्य वस्तु कहा जाता है।" प्र०—"ब्रह्म को 'ज्ञान' क्यों बतलाया है?" उ०—"जगत् स्वकीय स्फूर्ति से शून्य है, अतः वह प्रकाश स्वभाव नहीं है। जो अपना प्रकाश करने में असमर्थ है, वह ज्ञान-स्वरूप नहीं हो सकता। ब्रह्म तो स्वयं प्रकाशमान है। अपना स्वरूप या आत्मा किसी के लिये भी अविदित या अप्रकाशित नहीं है, इसलिए ब्रह्म जड़ या परप्रकाश्य नहीं हो सकता, किन्तु वह ज्ञान स्वरूप वस्तु है।" प्र०—"अच्छा, तब 'योग के द्वारा आत्मा का ज्ञान होता है,' 'समाधि में आत्मा प्रकाशित होता है' इत्यादि वाक्यों का तात्पर्य क्या है!" उ०—मेघ से आवृत सूर्य मेघ का अपनयन होने पर जैसे प्रकाशित हो जाता है, वैसे ही परिच्छिन्न अहम् भाव के द्वारा अभावापन्न आत्मा भी त्रिपुटी और तत्कारण अविद्या का निरसन हो जाने पर फिर से भासमान होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वास्तव में आत्मा तो ज्ञानस्वरूप और सदा अपरोक्ष है। प्रत्यक्ष प्रमाण की भी प्रत्यक्षता सर्वाधिष्ठान, ज्ञानस्वरूप ब्रह्मात्मतत्त्व का तादात्म्य (एकीभाव) होने पर उत्पन्न होती है।" प्र०—"ब्रह्म 'अनन्त' कैसे है ?" उ० - घट आदि जड़ पदार्थ जैसे देश, काल और अन्य पदार्थ द्वारा सीमित होते हैं, वैसे परिच्छेद से ब्रह्म युक्त नहीं है, इसलिए उसे अन्तरहित या अनन्त कहा गया है। देश, काल और सम्पूर्ण पदार्थ माया के विलास मात्र हैं, अतः मायिक या मिथ्या पदार्थों के द्वारा ब्रह्म का अन्त या अवधि किस तरह की जा सकती है !" प्र०--फिर सत्य, ज्ञान और अनन्त अनेक वस्तु हैं !" उ०—"नहीं, जड़ से विलक्षण होने से ब्रह्म को ज्ञान कहा गया है, मिथ्या पदार्थों से पृथक् करने के लिए सत्य कहा गया है और परिच्छेद रहित होने से अनन्त कहा गया है, तथापि इन त्रिविध लक्षणों से लक्षित ब्रह्म को एक, अखण्ड और भेद-शून्य वस्तु ही समझना चाहिए।"

प्र०--"ऐसे ब्रह्म को कहाँ खोजना चाहिए !" उ०--ब्रह्म गुहा के भीतर अन्धकार में स्थित है। देह के भीतर प्राण, प्राण के भीतर मन, उस के बीच में विज्ञानमय कर्ता और उस के भीतर अनन्दमय भोक्ता स्थित है। देह से लेकर आनन्दमय पर्यन्त (अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय इन पाँच) कोश-परम्परा को 'गुहा' कहा गया है। आनन्दमय कोश में स्थित जगत् का कारणरूप अज्ञान ही परम आकाश कहा गया है। ब्रह्म इस प्रकृष्ट अज्ञान द्वारा आवृत है।" प्र०—शरीर में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गुप्तरूप से स्थित तो जीवचैतन्य है, न कि ब्रह्म चैतन्य !" उ० "यह ठीक नहीं है, क्योंकि जीवभाव की निवृत्ति होने पर जीव चैतन्य ही ब्रह्मरूप में पर्यवसित हो जाता है। प्राणमय कोश में अभिमान करने से, प्राण-धारक होने के कारण ब्रह्म ही 'जीव' इस नाम से कहा गया है। अन्त में प्राणमय कोश से विवेक करने पर जीवचेतन स्वाभाविक ब्रह्मरूप में ही स्थित हो जाता है।" प्र० - ब्रह्म को उपलब्धि कैसे की जा सकती है !" उ०—विवेक-ज्ञान के द्वारा ही जीव पञ्चकोश में अभिमान या निजत्व बुद्धि का निवारण करके पञ्चकोश से विलक्षण अपने ब्रह्मस्वरूप का साक्षात्कार कर सकता है, अन्यथा नहीं।" प्र०--"इसे ही और स्पष्ट करके कहिये।" उ०--"स्रक् (माला) चन्दन, वनिता इत्यादि बाह्य जगत् और अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय एवं आनन्दमय पञ्चकोशों को क्रमशः परित्याग करने पर जीव की बुद्धिवृत्ति अन्तर्मुख (प्रत्यक्आत्माकार से आकारित) हो सकती है और इसके परिणामस्वरूप समस्त उपाधि से विवर्जित ब्रह्म को अपने वास्तविक स्वरूप में जाना जा सकता है। बहिर्मुख दृष्टि में बुद्धि अनात्मपदार्थों से संसृष्ट होने के कारण सविशेष ब्रह्म का ही भान होता है, इस लिए जीवभाव दूर नहीं होता और संसार भी निवृत्त नहीं होने पाता। अन्तर्दृष्टि का उदय होने पर निर्विशेष ब्रह्म भासमान होता है, अतएव अन्तर्मुखता के सम्पादन द्वारा ब्रह्म का साक्षात्कार करना चाहिए। तभी जीवभाव नष्ट होगा। जब तक दृष्टि (वासना-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सहित बुद्धि) जगत् के विषय में निबद्ध है, तब तक आकाश आदि प्रपञ्च सत्यरूप में अनुभूत होता है। विवेक उत्पन्न होने पर अनात्मा में सत्यत्व-बुद्धि हट जाती है और योग (समाधि) के अभ्यास से दृश्य जगत् का भान भी चला जाता है। बहिर्मुखता की निवृत्ति होकर अन्तर्दृष्टि का उदय होने पर आनन्दमय कोश के भीतर छिपे हुए जीव चैतन्य का विवेकशील पुरुष ब्रह्मरूप में साक्षात्कार कर सकता है।" प्रश्न—"साक्षात्कार या ब्रह्मभाव की प्राप्ति होने से भी अविद्वान की अपेक्षा ज्ञानी पुरुष को विशेष लाभ क्या हो सकता है? उत्तर—"विद्वान मनुष्य की एक ही समय में सभी अभिलाषाओं की पूर्ति हो सकती है, यही अज्ञानी से ज्ञानी पुरुष की स्पष्ट विशेषता है। सम्पूर्ण विषयानन्द ब्रह्मानन्द का एक तुच्छ अंश होने के कारण ब्रह्मानन्द के लाभ में समस्त विषयानन्दों का तो सहज में ही एक साथ लाभ हो सकता है। जीव को जो माला आदि बाह्य विषयों की इच्छा होती है, वह तो (नित्य सन्निहित ब्रह्म को न जानकर) विषय में अनुरागवश हुई सुखबुद्धि के कारण ही होती है, इसीलिए ज्ञान होने पर ब्रह्मानन्द में समस्त विषय सुखों का अन्तर्भाव या परमानन्द प्राप्ति की उक्ति सर्वथा युक्तियुक्त है। अभीष्ट विषय की प्राप्ति होने पर इच्छा की क्षणिक निवृत्ति हो जाती है और फलस्वरूप हृदय स्थित ब्रह्मसुख का ज्ञान हो जाता है। जिस पुण्य से यह सुखानुभव हुआ, भोग द्वारा उसके क्षीण होने पर पुण्य क्षय के कारण जीव को पुनः विषय में सुखबुद्धि (यह विषय उत्तम या उत्कृष्ट है' ऐसी समीचीन बुद्धि या शोभनाध्यास) का उदय होकर चित्त में अन्य विषय की इच्छा उत्पन्न होती है। विषयजनित सुख

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

क्षणिक होने के कारण उसे ब्रह्मसुख का विन्दु कहा गया है। चित्त में विषयासक्ति या वासना वर्तमान रहने से ब्रह्मसुख ही विषयानन्दरूप में प्रतीत होता है (यह ब्रह्मसुख का आभासमात्र है, भिन्न वस्तु नहीं है)। अन्तर्दृष्टि दृढ़ होने पर (साक्षात्कार से उत्पन्न सहज ब्रह्माकारवृत्ति द्वारा) विवेकी सर्वदा ब्रह्मानन्द का ही अनुभव कर सकते हैं (जिसके भीतर क्षणिक विषय-सुख समूह स्वतः ही निहित हैं)। इस आनन्दैकरस ब्रह्म में स्थित तत्त्ववेत्ता एक ही समय में सब काम्य विषयों का भोग कर सकता है। यही ब्रह्मप्राप्तिरूप फल या ज्ञानी पुरुष की विशेषता है।"

प्र०—"ब्रह्म को 'अनन्त' कहने का अभिप्राय क्या है।"

उ०—"कल्पित जगत् बहुविधि होने से जगत्कारण ब्रह्म भी विविधरूप में प्रतिभात या अनन्त हो सकता है, ऐसा श्रुति-तात्पर्य कहा जा सकता है। पञ्चकोशरूप गुहा के भीतर वर्तमान कारण-रूप (विस्तृत एवं साक्षीभास्य , अज्ञान में गूढ़रूप से (अविद्या द्वारा आवृतरूप में) अवस्थित सत्स्वरूप ब्रह्म से आकाश उत्पन्न होता है। आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी, पृथ्वी से ओषधी, ओषधी से अन्न और अन्न से पुरुषरूप देह उत्पन्न होता है। देह का कारण अन्न, अन्न का कारण औषधी (कदली, धान्य आदि तरु-लता) इस तरह पूर्ववर्ती को कारण और परवर्ती को कार्यरूप में समझना चाहिए। आकाश से देहपर्यन्त सब प्रपञ्च मायिक होने के कारण ब्रह्म की निर्विशेषता अक्षुण्ण है। 'इन्द्र (परमात्मा) माया द्वारा अनेक रूप में आविर्भूत होता है' यह श्रुतिवाक्य ब्रह्म-सम्बन्धी माया के विषय में प्रमाण है। (मायामय भूत एवं भौतिक सृष्टि का ब्रह्म ही कारण होने से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ब्रह्म को अनन्त कहा गया है)। अन्य श्रुति-वाक्यों में ब्रह्म को जो भिन्न भिन्न उत्कृष्ट शक्तिसमूह की विद्यमानता की खान कहा गया है, वह ब्रह्म की शक्ति (परमार्थतः मिथ्या होने के कारण) माया शब्द का ही नामान्तर समझना चाहिए।" प्र०—"शक्ति मिथ्या क्यों है?" उ०—सत्य ब्रह्म से भिन्न होने के कारण ब्रह्मशक्ति (माया) का मिथ्या होना ही योग्य है। विशिष्ट भान का (भिन्नरूप में प्रतीति का) विषय होने से ईश्वर की शक्ति वास्तव में मिथ्या है। निस्तत्त्व या सत्तारहित होकर भी जो प्रतीत होता हैं, उसको ही माया या इन्द्रजाल कहा जा सकता है। मायाशक्ति अनेकविध होने के कारण उसके आकाश आदि कार्यसमूह के नाम और रूप में परस्पर विलक्षणता या अनेकता दिखलायी पड़ती है।" प्र०—किन्तु जगत् तो सत्यरूप में भासित होता है न?" उ०—"नहीं, यह ठीक नहीं है। जैसे रज्जु की दीर्घता भ्रमकालीन सर्प, जलधारा, दण्ड और माला में अनुगत होती है, वैसे ही समस्त कल्पित पदार्थों के अधिष्ठान होने से ब्रह्म की सत्यता आरोपित आकाशादि में भी अविकल्परूप से प्रतीत होती है। आकाश से लेकर देहपर्यन्त समस्त भूत और भौतिक प्रपञ्च में ब्रह्म की सत्यता का भान होता है, अतः ब्रह्म सत्य है, इसमें सन्देह नहीं रहता। 'यह सर्प है' ऐसी भ्रम-प्रतीति के समय जैसे दीर्घ रज्जु का ही सत्यरूप में भान होता है, वैसे ही आकाशादि देहपर्यन्त विषयसमूह में अनुस्यूत ब्रह्मसत्ता का ही अवभास होता है।" प्र०—"ब्रह्म में जगत् का अध्यारोप किसने किया है?" उ०-प्रपञ्चरहित

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ब्रह्म का प्रतिपादन अध्यारोप तथा अपवाद द्वारा ही हो सकता है। विना आरोप के यदि ब्रह्म में प्रपञ्च का निषेध किया जायेगा, तो प्रपञ्च की अन्यत्र सत्ता सम्भव होगी। अतः अद्वितीय ब्रह्म को निःसन्दिग्धरूप में प्रतिपत्ति न होगी। इसलिए ब्रह्म में ही जगत् का आरोप या कल्पना की गयी है। प्र०—"प्रपञ्चस्वरूप का निषेध कर जगत् में ब्रह्मात्मबुद्धि का उत्पादन किस क्रम से किया जायगा?" उ०—"सर्वप्रथम पुत्रादि में से आत्मत्वबुद्धि का निराकरण करने के लिए देह में निजत्व भाव कहा गया है, वस्तुतः इसका अभिप्राय यह नहीं है कि देह ही आत्मा है।" प्र०–"पुत्र निजस्वरूप कैसे हो सकता है?" उ०-पुत्र में आत्मत्व भ्रम लौकिक व्यवहार से सिद्ध है। अहं-प्रतीति का विषय होने से पुत्र, स्त्री आदि में युक्ति से भी आत्मत्वबुद्धि प्रयुक्त होती है। साधारण मनुष्य पुत्र की पुष्टि से अपने को पुष्ट समझता है। इस लोकसिद्ध भ्रम का अनुवाद करके 'ऐतरेय' श्रुति में कहा गया है कि पिता की मृत्यु के उपरान्त अवशिष्ट कर्तव्य कर्म करने के लिए पुत्र ही प्रतिनिधि हो सकता है। पिता-पुत्र में भेद नहीं है)।" प्र०–"पुत्र आत्मा नहीं है, देह ही आत्मा है, इस विषय में क्या युक्ति है?" उ०–"मेरा पुत्र' इस युक्ति में अपने और पुत्र में स्पष्ट ही भेदभाव देखा जाता है। पुत्र गौणरूप से आत्मा (ममता का आस्पद) होने पर भी मुख्य निजभाव तो शरीर में ही होता है (भृत्य आदि में जैसे सिंहत्वबुद्धि गौण होती है, वैसे ही)।" प्र०-"क्या ऐसे निश्चय से पुत्र में आत्मताभ्रम का निवारण होगा?" उ०—"नहीं, वासना की प्रबलता से यदि पुत्र में आत्मबुद्धि हो जाय, तो देह में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

निजत्वभाव को दृढ़ करने के लिए देहात्मभाव का अभ्यास या उपासना करनी पड़ेगी। इस से पुत्र में अनन्यभाव के संस्कार निवृत्त होने पर शरीर में आत्मत्वबुद्धि प्रतिष्ठित होगी।" प्र०—"इस उपासना का अवलम्बन क्या होगा।" उ०-देह को ही निजरूप में पुनः पुनः चिन्तन या भावना करने के लिए शरीर को पक्षिरूप में कल्पना करनी चाहिए। पक्षी का शिर है, वैसे पुरुष का भी शिर है, पक्षी के दो पंख हैं, वैसे पुर्वाभिमुख पुरुष के भी दक्षिण-उत्तर दो हाथ पंखरूप में होते हैं। देह के मध्यभाग को आत्मरूप में (पक्षी के असली भाग या साररूप में) समझना होगा और नाभि से नीचे के भाग को पक्षी की पूँछ के रूप में (जिसके अवलम्बन से पक्षी स्थित होता है या प्रतिष्ठित होता है, उसे प्रतिष्ठा कहा जा सकता है) भावना करनी चाहिए। तभी धीरे-धीरे देह में अभिन्नबुद्धि का अभ्यास हो सकेगा और उससे दृढ़ता प्राप्त होगी। प्र०-"इस उपासना का तात्पर्य क्या है?" उ०—"ध्यान के बिना ज्ञान की दृढ़ता (सजातीय संस्कार का उपचय) नहीं होती, इसलिए शास्त्र में विवेक के आवश्यक साधन या सहायकरूप में उपासना बतलायी गयी है। उपासना की स्तुति या अवान्तर फलकथन 'अरुन्धती न्याय' से प्रकृष्ट तत्त्वबोध के माहात्म्य में परिसमाप्त है। देहात्म-उपासना के फलस्वरूप पुरुष को शरीर में आत्मत्वबुद्धि का उदय होता है, पुत्र में नहीं, जैसे संन्यासग्रहण के उपरान्त ज्ञानी के चित्त में स्वजनों के सुख-दुःख से विकार उत्पन्न नहीं होता। देहोत्पत्ति के कारणभूत अन्न में ब्रह्मभावना करने से हितकर तथा इच्छित सब प्रकार की भोज्य-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सामग्री प्राप्त होती है।" प्र०-"तब क्या देह ही आत्मा सिद्ध होता है।" उ०-"नहीं, पूर्वोक्त विवेक या ध्यान के द्वारा पुत्रादि में से 'आत्मत्वबुद्धि का यथायोग्य निराकरण करने के बाद देहात्मभाव का भी त्याग करने के लिए फिर प्राण में आत्मबुद्धि करनी पड़ती है।" प्र०-"इसमें क्या प्रमाण है।" उ०-"सुनो, देह निजी वास्तविक स्वरूप नहीं हो सकता, क्योंकि पूर्वजन्म में यह शरीर नहीं था। उस जन्म के शुभाशुभ कर्मों के फलस्वरूप यह वर्तमान देह उत्पन्न हुआ है। दूसरी युक्ति यह है कि जीवन (आयु) और मृत्यु का कारण होने से प्राण ही जीव का आत्मा होना उचित है, शरीर नहीं।" प्र०-यहाँ प्राणात्मनिश्चय के उपरान्त भी क्या ध्यान या विचार का प्रयोजन है?" उ०-देह में आत्म भावना के हेतु संस्कार की सम्यक् निवृत्ति के लिए 'प्राण ही आत्मा है' ऐसा ध्यान करना आवश्यक है। उपासना में रुचि उत्पन्न करने के लिए अवान्तर फल बतलाया जाता है। प्राण का ब्रह्मरूप से चिन्तन करने के लिए अवान्तर फल बतलाया जाता है। प्राण का ब्रह्मरूप से चिन्तन करने से दीर्घ आयु प्राप्त होती है।" प्र०-"इस प्राणोपासना की प्रणाली क्या है।" उ०-यहाँ भी पूर्वकथित उपासना प्रकार का अतिदेश करना होता है। प्राण (श्वास) अपान (अधोगमन), समान (सब शरीर में अन्न का समीकरण), उदान (उद्गार आदि) और व्यान (शारीरिक बल) यह समुदाय ही प्राण की वृत्ति, व्यापार या क्रिया-समूह प्राणमय शब्द का अर्थ है। पहले की तरह इन्हें शिर, दो पंख, मध्य भाग और पुच्छरूप में कल्पना करके वृत्तिसंघात प्राणामय को ब्रह्मरूप में (निजी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आत्मस्वरूप में) ध्यान करना चाहिए।" प्र०—इसके बाद की विवेक भूमिका कौन होगी।" उ०—"इसीतरह ध्यान के द्वारा देह में आत्मभाव के संस्कार निवृत्त होने पर विचार द्वारा प्राण-मयकोश में भी आत्मभावना का परित्याग कर मन में आत्मत्व-बुद्धि करनी पड़ती है।" प्र०-इसमें युक्ति क्या है।" उ०—"जड़ होने के कारण प्राण निजीस्वरूप नहीं हो सकता, क्योंकि चेतन ही आत्मा होने में उपयुक्त है। सर्व पदार्थों का प्रतिभासक होने से मन ही ऐसो चेतन वस्तु है, प्राण नहीं। मन क्यों चेतन है, इसे विशेष रूप में बतलाना आवश्यक है। मन ही नेत्र आदि इन्द्रियों की सहायता से बाह्य घटादि पदार्थों का और इन्द्रिय निरपेक्ष होकर सुखादि आभ्यन्तर अर्थों का प्रकाश करता है।" प्र०-"मन को उपासना कैसे होती है?" उ०-विचार द्वारा 'मन ही आत्मा है' ऐसा निश्चय कर प्राण में आत्मबुद्धि के संस्कार की निवृत्ति के लिए शिर आदि पाँच अङ्गों से युक्त तथा पक्षीरूप में कल्पित मन का निजरूप में ध्यान करना चाहिए (एकाग्र चित्त जहाँ विश्रान्ति प्राप्त करता है, उसे आत्मब्रह्म कह कर मन आदि चिन्त्यमान विषय के ध्यान को तत्तत्पदार्थों की ब्रह्मरूप में उपासना बतलायी गई है)। यजुः मनोमय कोश का शिरः स्थानीय, ऋक् दक्षिण पक्ष, साम उत्तर पक्ष, वेद विधिरूप आदेश मध्य भाग या आत्मा और अथर्वाङ्गिरस प्रतिष्ठारूप पुच्छ है (यही यजुः आदि विषयक पांच मनोवृत्ति की पक्षिरूप कल्पना है।" प्र०-"मन की ब्रह्मरूप से उपासना की विशेषता क्या है?" उ०-"मन से आत्मा का तादात्म्याध्यास होने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

के कारण मन में ब्रह्मबुद्धि करना अत्यन्त युक्तियुक्त (उचित तथा सार्थक) है, यही युक्तिद्वारा कहा जाता है। इसीलिए वाणी और मन से अगम्य ब्रह्म के जानने में मन समर्थ होता है, अतः मन को ब्रह्मरूप में उपासना कही गयी है।" प्र०-यह निर्दिष्ट हेतु तो पूर्वापर विरोधरूप दोष से युक्त प्रतीत होता है।" उ०—"यह विरोधाभास मात्र है, वास्तविक विरोध नहीं है। ब्रह्म यद्यपि वृत्ति में आरूढ़ चिदाभास का विषय नहीं है, तथापि तदाकारवृत्ति से ब्रह्मविषयक अज्ञान नष्ट होता है, अतः सोपाधिक (अज्ञान या अज्ञानोपहित) ब्रह्म वृत्ति का विषय भी होता है (स्वयं बोधरूप ब्रह्म मन द्वारा प्रकाशित न होने पर भी 'असङ्ग, चेतन और परमानन्दरूप' में—निषेध एवं विधिमुख से—ब्रह्म को न जानने पर ब्रह्मविषयक आवरण अपसारित नहीं हो सकता, अतएव मन की अन्तर्मुखता या ब्रह्माकार में आकारित वृत्ति की आवश्यकता होती है)।" प्र०—"आगे की भूमिका बतलाइये।" उ०—"ध्यान की सहायता से उक्त प्रकार से प्राण में स्थित बुद्धि का संस्कार नष्ट होने पर विचार द्वारा क्रमशः मन में भी आत्मबुद्धि का निराकरण करना पड़ता है।" प्र०—"कैसे !" उ०—सुनो, बुद्धि या विज्ञान ही आत्मा होना उचित है। कर्ता होने से मन तो करणमात्र है, इसलिए वह निजी वास्तव स्वरूप नहीं हो सकता।" प्र०—"इसे जरा स्पष्ट करके कहिए।" उ०—"मैं कर्ता हूँ' ऐसा सविकल्प ज्ञान जिसे विषय (लक्ष्य) करता है, वही आत्मा है। इसे अनुभवप्रमाण के द्वारा विशद करता हूँ—यह अहङ्कर्ता (अहंभावविशिष्ट बुद्धि) जाग्रत अवस्था में नख से मस्तक पर्यन्त

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

व्याप्त होता है, अतः देह चेतनायुक्त प्रतीत होता है और निद्रा काल में 'मैं' इस प्रत्यय के विषय (यह अहङ्कार या विज्ञान) का लय हो जाने से देह जड़ की तरह मूर्च्छित हो पड़ता है। इसलिए विज्ञान ही जीव का वास्तविक स्वरूप है। 'मेरा मन' इस युक्ति में मन में ममता का विषयत्व अनुभव सिद्ध होने से मन आभ्यन्तर करण मात्ररूप में प्रमाणित होता है।"

प्र०—"विज्ञान की उपासना का क्या प्रकार है!" उ०—मन में अभिन्न भावना के निरसन के लिए विज्ञान या कर्त्ता की पक्षिरूप में कल्पना करके पूर्ववत् ध्यान करना चाहिए। श्रद्धा (आस्तिक्य बुद्धि) विज्ञानमय का शिर, ऋत (यथार्थ चिन्तन) दक्षिण पक्ष, सत्य (यथार्थ भाषण अर्थात् तदनुकूल सङ्कल्प या विज्ञान वृत्ति) उत्तर पक्ष, योग (बुद्धि की एकाग्रता) मध्य भाग (आत्मा) और यह (योगज ज्ञान या महत्तत्व) पुच्छ या प्रतिष्ठा है। इसतरह मनोमय की अपेक्षा आन्तर और सत्य विज्ञानमय में आत्मभावना की स्तुतिपूर्वक उस में रुचि उत्पन्न कराने के लिए उपासना का अवान्तर फल निरूपित होता है। लौकिक तथा वैदिक कर्मों का कर्ता जो विज्ञानमय है, उस की मरण पर्यन्त जो सावधानी से ब्रह्मदृष्टि से उपासना करता है, वह ब्रह्मलोक में सुख प्राप्त करता है।" प्र०—"इस के आगे कौन भूमिका है?" उ०—"मन में अभेद संस्कार का नाश होने पर विज्ञानमय में भी (शोकादि विशिष्ट होने के कारण) स्थिर बुद्धि का त्याग करना चाहिए।" प्र०—"भ्रम परित्याग की कोई सरल युक्ति बतलाइये?"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उ०—"विज्ञानमय कर्ता तो दुःख का भागी है ही और शास्त्र में तो आत्मज्ञान का फल शोकातिक्रमण सुना जाता है। इसलिए 'मैं कर्ता हूँ' ऐसी बुद्धि वास्तव में आत्मा हो नहीं सकती। आनन्दमयकोश में जो आनन्द है, वही निरतिशय प्रेम का विषय होने से जीव का यथार्थ स्वरूप होने योग्य है। अपने वास्तविक स्वरूप में जीव का 'मैं सर्वदा वर्तमान रहूँ' ऐसी परम प्रीति दिखायी पड़ती है।" प्र०—"अस्तु, यदि परम प्रेम का विषय होने से आनन्दमय को आत्मा कहा जाय, तो 'मैं शोकमान हूँ' ऐसा अपने में शोक का अनुभव कैसे होता है!" उ०—"शोक बुद्धि का धर्म है। कर्तारूप विज्ञानमय से मिलित होने के कारण (अध्यासवशात्) आनन्दस्वभाव आत्मा में निजानन्द का अभाव होकर कभी कभी दुःख भासित होता है। शोक जिस बुद्धि का गुण है, इसे ही व्यतिरेकमुख से दृढ़ किया जाता है। मूर्च्छा, सुषुप्ति और समाधिकाल में बुद्धि का विलय हो जाने से नित्य आनन्दस्वरूप आत्मा में दुःख का लेश भी नहीं दिखलायी पड़ता।" प्र०—अच्छा, बुद्धि के लीन होने पर आनन्द की भी तो प्रतीति नहीं हो सकती। फिर उस समय आनन्द का ज्ञान कैसे होगा?" उ०—"मूर्च्छा आदि अवस्था में बुद्धि का कारण अज्ञान अवशिष्ट रहता है, उसी के स्वाभाविक परिणाम स्वल्प सूक्ष्म आनन्दाकारवृत्ति का उदय होता है। वह वृत्ति ही उस समय प्रतिबिम्ब-आनन्द का अनुभव कराती है। सुषुप्ति आदि समय में अविद्या की वृत्ति द्वारा और जाग्रत आदि समय में बुद्धिवृत्ति द्वारा स्वरूपानन्द का भान होता है।" प्र०-"दुःख का अनुभव

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कैसे होता है? सुख का तारतम्य है क्या" उ० – "राजस बुद्धिवृत्ति में प्रतिफलित निजानन्द ही दुःखरूप में प्रतिभात होता है। यह आत्मस्वरूप ही सात्विक वृत्ति के संस्पर्श में सुखरूप से अनुभूत होता है। अन्तर्मुख बुद्धिवृत्ति से उत्पन्न प्रिय, मोद और प्रमोद, यही तीन प्रकार का सुख शास्त्र में कहा गया है। इष्ट वस्तु का दर्शन होने पर जो आल्हाद होता है, उसे प्रिय कहा गया है। इसकी प्राप्ति होने पर जो उत्कृष्ट सुख प्राप्त होता है वहीं 'मोद' कहा गया है और ईप्सित पदार्थ के भोग से होने वाला सुखातिशय 'प्रमोद' कहा जाता है।" प्र०–"आनन्दमय की उपासना का प्रकार क्या है ?" उ०–"भावना-प्रचय के लिए आनन्दमय कोश की पक्षिरूप से कल्पना करके पहले ही की तरह ब्रह्मदृष्टि से उपासना करनी चाहिए। उक्त प्रिय, मोद, प्रमोद, अज्ञानानन्द अज्ञान की आनन्दाकार वृत्ति और निराभास विश्वरूप आत्मानन्द के पाँच अवयवों को शिर, पक्षद्वय, मध्यभाग और पुच्छ (या प्रतिष्ठा) समझना चाहिए।" प्र०-इस अन्तिम उपासना का फल क्या है ?" उ०—"अन्न, प्राण, मन, विज्ञान और आनन्द से यथाक्रम उत्पन्न अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय, इन पाँच कोशों में पूर्व पूर्व कोश की अपेक्षा उत्तरोत्तर कोश आत्मा के निकट हैं। विज्ञानमय की उपासना की तरह आनन्दमय कोश की भी उपासना की कल्पना कर लेनी चाहिए। उपासना का आवान्तर या प्रासङ्गिग फल यह है—आनन्दमय का आमरण नियमित रूप से, ब्रह्मबुद्धि से चिन्तन करने से उपासक समस्त पापों से विनिर्मुक्त होकर अभिलषित वस्तु को प्राप्त कर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लेता है। प्रधान फल या परम प्रयोजन तो अर्थ द्वारा अन्त में तत्त्वबोध या ब्रह्मात्मक ज्ञान हो सम्भावित होता है।" प्र०-कैसे ?" उ०—आनन्दमयकोश का पञ्चम अवयव आत्मानन्द बतलाया जा चुका है। उसे ब्रह्मरूप से जानकर (आनन्दमय का अन्तिम अङ्ग निजानन्द को ही शुद्ध पक्षीरूप में या ब्रह्मरूप में साक्षात्कार करके) ब्रह्म ही हो जाया जाता है। उपासना द्वारा सर्वपाप क्षयरूप चित्तशुद्धि होने पर (एकाग्रता से निष्कामता आने पर) तत्फलस्वरूप ब्रह्मतत्व का दर्शन होता है, हृदय कुहर में स्थित ब्रह्मात्मरूप का बोध होने से सब कामनाएँ सिद्ध हो जाती हैं। अतएव उपासना का प्रकृष्ट प्रयोजन ब्रह्मात्मस्वरूप का बोध है, अन्यथा सर्व अभीष्ट-प्राप्तिरूप फल किसी तरह सम्भव नहीं हो सकता।" प्र०-"आनन्दमय का ज्ञान होने पर इष्टसिद्धि क्यों नहीं होती ?" उ०-प्रियादि अवयव से विशिष्ट होने के कारण आनन्दमय कोश ब्रह्म नहीं है। असत्य, अनात्म वस्तु के बोध में वास्तविक सिद्धि कुछ भी नहीं हो सकती।" प्र०-"जगत्, पञ्च कोश और ब्रह्मात्मा का क्या सम्बन्ध है ? उ०-गुहा में स्थित सत्य, अनन्त, संवित्स्वरूप ब्रह्म के द्वारा ही पञ्च कोश और जगत् प्रकाशित होता है।" प्र०—समस्त विषय और पञ्चकोश तो दृश्य पदार्थ होने के कारण सत्य हैं और ब्रह्म तो अदृश्य होने से मिथ्या है ?।" उ०—"यह ठीक नहीं है। यदि कहो कि ब्रह्म नहीं है, तो तुम स्वयं असत्य हो जाओगे प्र०-"पञ्चकोश तो मिथ्या मान लिए गए, अतः तद्व्यतिरिक्त अन्य कुछ भी आत्मारूप सिद्ध न हो सका ?" उ०-"यह नहीं कहा जा सकता। प्रिय, मोद और प्रमोद, यह तीन तो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विनाशशील हैं और अज्ञान ज्ञान उत्पन्न होने पर नष्ट हो जाता है (बुद्धि भी अविद्या की वृत्ति होने से यह चारों प्रतिबिम्ब या विषयानन्द नश्वर हैं)। आनन्दमय कोश के अधिष्ठानभूत परमतत्त्व (ब्रह्मानन्द) को यदि आप नहीं देखते या मानते; तो एक अद्वितीय सत्य वस्तु का ग्रहण न होने से आप स्वयं असत्कल्प हो जायेंगे। अन्नमय से लेकर आनन्दमय पर्यन्त कोशों में निजत्व-भ्रम का निराकरण हो जाने के उपरान्त आनन्दमय के पाँचवें अवयव पुच्छ—प्रतिष्ठारूप में लक्षित विश्वभूत निजानन्द जो शुद्ध अवयवी ब्रह्म है, वही विवेकी का वास्तव अविनाशी चिदानन्दस्वरूप है। इसको स्वीकार विना किये नास्तिक स्वयं ही सत्तारहित हो जायेगा।' प्र०-"किन्तु अदृश्य ब्रह्म की सत्ता कैसे मानी जा सकती है?" उ०—अपने से अभिन्न होकर भी स्वयं बोधरूप होने के कारण अदृश्य ब्रह्म स्वयं अनुभव का विषय हो सकता है। परिमित या वृत्ति-स्वरूप जो ज्ञान संविदालोक में स्फुरित होता है, वह सर्वदा प्रकाशशील ब्रह्म ही तो वक्ता का सर्वान्तरतम आत्मा है।' प्र०—"तब तो आत्मा अनेक प्रकार का है क्या?" उ०—हाँ, पुत्र, भार्या आदि गौण (अप्रधान) आत्मा है, अन्नमय आदि कोश मिथ्या आत्मा है और ब्रह्मानन्द मुख्य (प्रधान) आत्मा है। यह तीन प्रकार का आत्मा क्रम से तैत्तिरीय श्रुति में विवेचित किया गया है।" प्र०—"पूर्ववर्ती आत्मा का परवर्ती आत्मा से क्या सम्बन्ध है?" उ०—"उत्तर कोश में (जैसे आनन्दमय में) आत्मबुद्धि का निश्चय होने पर पूर्वकोश (जैसे विज्ञानमय) शरीर भाव को प्राप्त होता है, और उत्तर कोश पूर्व कोश का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आत्मा होकर उसे पूर्ण करने के लिए शरीर नाम कहा जाता है (विज्ञानमय को देह या क्षेत्र और आनन्दमय को देही या क्षेत्रज्ञ कहा जाता है)।" प्र०—"अच्छा, तब तो अन्नमयादि विज्ञान-मयान्त सब कोश आनन्दमयरूप मुख्यात्मा का शरीर और आनन्दमय कोश शरीरी रूप है, यही सिद्ध होता है न ?" उ०—"नहीं, प्रिय, मोद, प्रमोद, अज्ञान और आनन्दरूप अन्तिम कोश का अवयव-समूह तो नश्वर है, अतः उस कोश को प्रधान आत्मा नहीं कहा जा सकता। अवशिष्ट आनन्दमय के अधिष्ठानभूत, निरपेक्ष (अवयव अवयवी-भाव से वर्जित) ब्रह्मानन्द को ही शरीर या मुख्य आत्मा कहना पड़ेगा। इसतरह सर्व प्रपञ्च के अपवादपूर्वक आनन्दस्वरूप ब्रह्मात्मा का प्रतिपादन किया गया।" प्र०—"इस ब्रह्मविद्या को 'उपनिषद' कहने का तात्पर्य क्या है ?" उ०—"इस विद्या के प्राप्त होने पर विद्वान् पुरुष को ब्रह्मस्वरूप भूत परम श्रेय अत्यन्त अभिन्न रूप में निरंतर प्राप्त हो जाता है।"

प्र०—"निरतिशय आनन्दस्वरूप ब्रह्म या ब्रह्मानन्द ही बुद्धिमान् पुरुष की आत्मा है, यह निरूपण किया गया। अब कृपाकर तत्वज्ञान के साधन के सम्बन्ध में बतलाइये।" उ०—"श्रवण और मनन ये दोनों तत्वबोध के साधन हैं। उक्त निर्णयरूप विज्ञान श्रवण का फल है।" प्र०—"तब मनन की क्या आवश्यकता है ?" उ०—"बुद्धिदोष से तीन प्रकार के सन्देह उत्पन्न होते हैं। मनन की सहायता से उनकी निवृत्ति होती है।" प्र०—"ये तीन सन्देह कौन से हैं ?" उ०—"ब्रह्म है या नहीं ?"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अज्ञानी मुक्त होता है या नहीं ? और तत्ववेत्ता मुक्त होता है या नहीं ?" प्र०—पहले का समाधान क्या है ?" उ०--"मूढ़ लोग 'नास्ति' पक्ष को लेकर कहते हैं कि नामरूपविशिष्ट आकाशादि प्रपञ्च ही सत्य है, ब्रह्म में रूप आदि न होने से वह मिथ्या है। किन्तु विवेकी पुरुष सृष्टि आदि अनेक हेतुओं का अवलम्बन करके अनेक प्रकार से ब्रह्म का अस्तित्व सिद्ध करके नास्तिक के मोहरूप अज्ञान (असत्वापादक) को दूर करने की चेष्टा करते हैं।". प्र --'ब्रह्मसिद्धि के हेतु सब कारणों को बतलाइये।" उ०-- "सृष्टि के पहले परमेश्वर ने अनेकरूप में आविर्भूत होने की इच्छा की, इस आशय के श्रुति वाक्य से कामनाविशिष्ट परमात्मा का अस्तित्व सिद्ध होता है।" प्र०—"ईश्वर की कामना कैसी है ?" उ०—वह निजशक्ति माया का ही परिणाममात्र है। इस कथन से सांख्याभिमत पृथक् प्रधानवाद का निरसन (अवैदिकता) सिद्ध होता है।" प्र०—"सृष्टि का उपादान कारण क्या प्रकृति नहीं है." उ०—वैशेषिकादि से कहे गये जगत् के उपादान और निमित्तवाद में भिन्नता और उनकी अवैदिकता श्रुति ने सूचित की है। 'स्वयं ही अनेक रूप में उत्पन्न होते हैं' इस उक्ति से यह सिद्ध किया गया है कि जैसे मृत्तिका से पात्र बनते हैं, वैसे ही निज-स्वरूप से ही महेश्वर ने जगत्सृष्टि की है अर्थात् परमात्मा ही जगत् का उपादान कारण हैं। बहुभवन की इच्छा द्वारा तो कुलाल की तरह ईश्वर ही स्वयं जगत्सर्जन का निमित्त कारण हुआ, यही तो स्पष्ट सिद्ध होता है।" प्र०--"निर्विशेष ब्रह्म जगत् का निमित्तकारण और उपादान कारण कैसे हो सकता है,"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उ०—"अचिन्त्य परमात्मशक्ति माया द्वारा दुर्घट कार्य भी सम्भव हो जाता है। जैसे लौकिक इन्द्रजाल में कुछ भी असम्भव नहीं, वैसे ही माया से सब कुछ सम्भव है। सृष्टि आतिवाहिक या विशुद्ध सात्विक ईश्वर-संकल्परूप और स्वाप्निक प्रपञ्च की तरह आधिभौतिक भेदभाव-वर्जित है। इसलिए मायिक सृष्टि में पर्यनुयोग या पर्यनुयोक्ता का अत्यन्त अभाव होने पर किसी प्रकार के दोष कथन का अवसर नहीं हो सकता। अतएव सब पक्षपात छोड़कर सृष्टि के विषय में श्रुति-सिद्धान्त (साधनान्तर निरपेक्ष ईश्वर ने ही जगन्निर्माण किया है) को ही अङ्गीकार करना उचित है।"

प्र०—"जगन्निर्माण के बाद ईश्वर ने क्या किया ?" उ०—सृक्ष्यमाण प्रपञ्च का—माया की अति सूक्ष्म वृत्ति के द्वारा—ईक्षण या आलोचनापूर्वक सृष्टि करके परमेश्वर ने प्रति शरीर में स्वयं जीवभाव से प्रवेश किया।" प्र०—"जीव किसे कहते हैं ?" उ०—प्रतिव्यक्तिबुद्धि में प्रतिविम्बित चेतन हो—प्राणधारक का प्रयोजक होने से—जीव कहा जाता है।" प्र०—"उसके बाद परमात्मा ने क्या किया ?" उ०—"भोग्यरूप से भी बने। जीव के भोग्य पदार्थ सत् और त्यत् भेद से दो प्रकार के हैं।" प्र०—"सत् और त्यत् किसे कहते हैं ? भोग्य शब्द का क्या अर्थ है ?" उ० प्रत्यक्ष पदार्थ को सत् और परोक्ष को त्यत् कहा गया है। इन का भाव और अभाव, कथन की योग्यता, एवं अयोग्यता इत्यादि व्यवहार के लिए इन्हें भोग्य पदार्थ कहा गया है।" प्र०—ब्रह्म के अवश्य अस्तित्व में क्या हेतु है ?" उ०—वेद वाक्य से पाँच कारण निर्दिष्ट हुए हैं—कामना करना, ईक्षण करना,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सृष्टि करना, प्रवेश करना, और भोग्याकार में अनेक रूप ग्रहण करना। ब्रह्म के सद्भाव में यही पाँच प्रकृष्ट प्रमाण हैं।" प्र०—अनुमान का स्वरूप कहिए और इस में क्या अन्य भी कोई प्रमाण है? उ०—"अनुमान का स्वरूप ऐसा है-(१)स्वर्ग कामी मनुष्य की तरह कामनाविशिष्ट होने के कारण परमात्मा सद्रूप है, २—राजा के मन्त्री की तरह आलोचक होने के कारण परमात्मा सद्रूप है, ३—कुलाल की तरह स्रष्टा होने के कारण वह सद्रूप है, ४—छिद्र में प्रवेश करने वाले सर्प की तरह प्रवेश करने के कारण परमात्मा सद्रूप है और ५—अन्न की तरह भोग्य सामग्री होने के कारण भी वह सद्रूप है। युक्ति को छोड़ दें तो भी परमेश्वर की सत्ता विद्वान् के अनुभवरूप प्रत्यक्ष प्रमाण से भी सिद्ध होती है।" प्र०—"ब्रह्मज्ञानी तो व्युत्थानावस्था या व्यवहार-काल में जगत् को ही देखेगा, ब्रह्म को नहीं।" उ०—"पहले जो ब्रह्म परमार्थ सत्यरूप से प्रतिपादित हुआ है, वही भ्रान्तिवश या माया के विलास द्वारा जगदाकार में प्रतीत या अतात्विक रूप में भासित होता है। सुतरां, विद्वान् पुरुष सब वस्तु को सर्वदा और सर्वत्र ब्रह्मरूप में ही देखता है। तत्त्ववेत्ता की तटस्थ दृष्टि-कल्पित जगद्दर्शन ब्रह्म-ज्ञानालोक के अन्तर्गत होने से वह अबाधित ब्रह्मदर्शन का ही नामान्तरमात्र है। प्र०—"इसे दृष्टान्त द्वारा स्पष्ट कीजिए।" उ०—"भ्रमकाल में जैसे रस्सी में सर्प, धारा आदि भाव कल्पित होते हैं, किंतु तत्वदृष्टि में वह रज्जुमात्र है, वैसे ही भ्रान्ति में अखिल जगदाडम्बर दिखलायी पड़ने पर भी वस्तुतः वह शुद्ध, निर्विशेष, अपरिणामी अधिष्ठान ब्रह्ममात्र ही में पर्यवसित होता है। ब्रह्मा-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तिरिक्त जगत् का सर्वकाल में अत्यन्त अभाव है।" प्र०—"तो क्या इस से पूर्व पक्षी का मत (दृश्य जगत सत्य है और अदृश्य ब्रह्म मिथ्या है) असिद्ध है !" उ०—"हाँ, जगत का सत्ताभास तो परमार्थ दृष्टि में नित्य ब्रह्म स्वरूप है।" प्र०—कैसे !" उ० "जैसे रस्सी की लम्बाई सर्पादिरूप में अनुभूत होती है, वैसे ही ब्रह्म की परमार्थ सत्यता आकाश, वायु आदि भूतों में वर्तमान है।"

प्र० "ब्रह्म जगत् का उपादान कारण है, इस का तात्पर्य क्या है !" उ०—सृष्टि के पहले जगत् के नाम-रूपादि अनभि व्यक्त थे। सृष्टिकाल में परमार्थ सत्य ब्रह्म के स्पर्श या अनुप्रवेश में वे स्पष्टरूप में भासमान हुए। ईश्वर से जड़ नाम और रूप की उत्पत्ति होने के कारण परमात्मा ही जगत् का उपादान कारण हुआ।" प्र०—तब तो ब्रह्म में विकार अवश्य ही होगा।" उ०—"नहीं, यह श्रुति-सम्मत नहीं है। जगत् निज रूप में मायिक होने के कारण मिथ्या ही है। मिथ्या पदार्थ से सत्य वस्तु में विकार नहीं हो सकता। सच्चिदानन्द स्वरूप में प्रसिद्ध प्रत्यक् ब्रह्म ने ही अपनी मायाशक्ति के द्वारा अपने आप को विविध रूप में प्रतीयमान जगत्-वेश में सज्जित किया है। जब सकल प्रपञ्च ही ब्रह्म है, तब ब्रह्मभिन्न पदार्थ का अभाव होने से विकार या उस के स्पर्श की सम्भावना ही नहीं हो सकती।" प्र०—"तब जगत् सत्यरूप में और प्रियरूप में प्रतिभात क्यों होता है !" उ०—ब्रह्म की सत्ता, स्फुर्ति और आनन्द मायाद्वारा कल्पित मिथ्याभूत समस्त पदार्थों में अध्यस्त या सङ्क्रमित है, इस लिए। वे प्रपञ्च के धर्म नहीं है। प्र०—'क्यों !" उ०—"इस का कारण यह है कि घटादि पदार्थों

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

के नाम और रूप पहले नहीं थे, फिर बाद में (व्यवहार-दशा में) कभी सत्यरूप में स्थित और कभी नष्टरूप में असत्य प्रतिपन्न होते हैं।" प्र०—इस से क्या सिद्ध होता है !" उ०—जो कुछ समय के लिए ही स्थायी या जिस को उत्पत्ति और विनाश होता है, उस वस्तु का स्वरूप या यथार्थ धर्म हो नहीं सकता। जैसे सोना और जागना शरीर का धर्म नहीं हो सकते, वैसे ही सत्ता और असत्ता पदार्थ के धर्म नहीं हो सकते, कभी सत् और कभी असत्, इस तरह के ज्ञान से प्रपञ्च का सद्भाव या घटादि पदार्थ की सत्यता सिद्ध नहीं होती।" प्र०-"अच्छा, नाम रूपविशिष्ट प्रपञ्च के सत्ता और असत्ता धर्म नहीं हो सके। अस्तु, तब फिर वे किस के धर्म हैं।" उ०-"ब्रह्म और माया ये दो भिन्न पदार्थ हैं। असत्ता माया का रूप और सत्ता ब्रह्म का रूप है। ये दोनों धर्म विभिन्न काल में नाम और रूप की सत्ता एवं असत्ता को प्रतीति के प्रयोजन होते हैं।" प्र०-"माया के और क्या क्या धर्म हैं। उ०--"जैसे ब्रह्म के ज्ञान और आनन्द ये दो अन्य गुण बतलाये गये हैं, वैसे ही जड़ता और दुःख माया के अवशिष्ट दो धर्म हैं। नाम और रूप के जाड्य एवं दुःख, ये दो अंश माया से प्राप्त होते हैं और स्फुरण तथा सुखरूपता ब्रह्म से।" प्र०—"यदि घट आदि सत्यरूप में स्फुरित होते हैं, तो उन्हें सत्य क्यों नहीं कहा जाता ?" उ०—सत्य रूप में प्रतीयमान होने पर भी वास्तविक सत्यरूप में परिगणित नहीं हो सकते, क्योंकि ऐसा होने पर सीपी में दिखलाई पड़ने वाला रजत भी सत्य हो जायेगा। अधिष्ठानरूप परमेश्वर की सनातन सत्यता को लेकर ही

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(अध्यास कर के ही) जगत् का सत्यरूप में ज्ञान उत्पन्न होता है, इसलिए जगत् की पृथक् सत्ता कदापि सम्भव नहीं है। अतएव उसको स्वीकार नहीं किया जाता। प्र०—"तब सत्यरूप में प्रतीयमान नामरूपात्मक जगत् क्या है?" उ०—ब्रह्मसत्ता ही एक, अखण्ड अनुभव मात्र है, अन्य कुछ भी नहीं। प्र०—ब्रह्म की सत्ता और स्फुर्ति तो घटादि में प्रकाशित देखी जाती है, किन्तु उसके आनन्दांश की, तो कोई प्रमाण न होने से, प्रतीति भी सम्भव नहीं है। उ० —"नहीं, यह ठीक नहीं है। जैसे गुड़ आदि द्रव्य अवश्य मधुर है, वैसे ही ब्रह्म भी चिद्रसमय होने के कारण परम सुखरूप है।" प्र०—"इस विषय में क्या प्रमाण है? उ०—बुद्धिशून्य पुरुष के लिए मिष्ट पदार्थ सरसरूप में प्रतीत और आनन्ददायक होता है, विवेकपरायण मनुष्य के लिए तो ब्रह्म ही अत्यन्त आह्लाद का हेतु होता है और तत्वज्ञ पुरुष चिद्रस ब्रह्म को पाकर ही परम सुखी होते हैं। **कार्य और करण के सङ्घातरूप इस देह में यदि ब्रह्मानन्द वर्तमान न रहता, तो जीवित रहना और क्रिया करना असम्भव हो जाता।** सम्यक् निरानन्द या निष्क्रिय पुरुष जीवित अवस्था में थोड़े काल के लिए ही दिखलाई पड़ते हैं।" प्र०—"देह की चेष्टा तो प्राण और इन्द्रिय के व्यापार द्वारा निष्पन्न होती है न?" उ०—नहीं, देह तो जड़ है और प्राण तथा इन्द्रिय करणमात्र हैं। प्र०—"तब दैहिक क्रिया का कर्ता कौन है?" उ०—"परमार्थ सत्यरूप देही आत्मा ही प्राणादि की चेष्टा का हेतु है। साधारण प्रिय वस्तु की प्राप्ति होने पर जीव क्षण भर के लिए जिस आह्लाद में निमग्न

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हो जाता है, वह तो अपने अन्तर्गत प्रत्यगानन्द में मग्न हो जाने के कारण ही सम्भव होता है, अन्यथा नहीं। विषयानन्द के एकमात्र साधकरूप में ब्रह्म की सुखस्वरूपता स्पष्ट निरूपित होती है।" प्र०—इस से क्या हुआ ?" उ०—"काम, सृष्टि इत्यादि से लेकर विषयानन्द की हेतुता पर्यन्त कारणसमूह के द्वारा ब्रह्म की सत्यता का निःसन्दिग्ध रूप में प्रतिपादन किया गया है। अब और क्या जानना चाहते हो ?'

प्र०—अज्ञानी और ज्ञानी की मुक्ति हो सकती है या नहीं ? उ०—"इस संशय की कोटि को स्पष्ट करके कहिये।" प्र० विद्वान ब्रह्मरूप होने के लिए मुक्त होते हैं, यदि ऐसा कहें तो मैं कहूँगा कि अज्ञानी भी तो ब्रह्मरूप ही है (कोई वस्तु ब्रह्मव्यतिरिक्त रह नहीं सकती) इसलिए ज्ञानी जैसे मुक्ति प्राप्त करता है, अज्ञानी भी वैसे ही मुक्त हो जाता है और ब्रह्मरूप ज्ञानी यदि बद्ध ही है, तो अज्ञानी भी बद्ध बने रहें, क्योंकि ब्रह्मरूप होने में ज्ञानी और अज्ञानी में भेद ही क्या हो सकता है ?" उ —ऐसा नहीं कहा जा सकता। सभी ब्रह्मरूप हैं, यह सामान्य वस्तु स्थिति मोक्ष का कारण नहीं है, किन्तु ज्ञात ब्रह्म या ब्रह्म का विशेष ज्ञान ही मुक्ति का साधक है।" प्र०—तत्त्वबोध की मोक्षहेतुता दृष्टान्त द्वारा स्पष्ट करके बतलाइये।" उ०—"ब्रह्मरूप प्रतियोगी और 'स्व' रूप अनुयोगी, इन दोनों की अभेदबुद्धि या एकताज्ञान मोक्ष का कारण होता है। जीव और ईश्वर के मध्य में जो एकता देखते हैं, वे मुक्त होते हैं और जो भेद देखते हैं, वे बद्ध रहते हैं। एक उच्चआकृति स्थाणु (पेड़ का ठूँठ) सामने है। एक व्यक्ति उसे चोर जानकर डरा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

और दूसरा व्यक्ति उसे शाखाहीन वृक्ष समझकर निर्भय रहा। इसी तरह अपने आप को ब्रह्मरूप में जो यथार्थतः जानते हैं, वही अभय होते हैं।" प्र०—सत्कर्म तथा ईश्वरोपासना द्वारा क्या भय निवृत्त नहीं होता ?" उ०—"नहीं, वेदान्त का अर्थ (ब्रह्म और आत्मा की तात्विक एकता) जब तक नहीं जाना, तब तक भय नष्ट नहीं हो सकता। वायु प्रभृति दिक्पाल अतीत जन्म में धर्मज्ञ होते हुए भी उन्होंने तत्वज्ञान प्राप्त नहीं किया, इसलिए अपने-अपने अधिकारानुसार वर्तमान दिव्य ऐश्वर्य के भोगकाल में भी वे परमेश्वर से भयभीत होते हैं।" प्र० ज्ञानी की यह भयरहित पूर्णानन्द में स्थिति कैसे जानी जाती है ?" उ०—मनुष्यलोक का सम्पूर्ण सुख सकलगुणसम्पन्न सार्वभौम चक्रवर्ती सम्राट् में विद्यमान रहता है। देवलोक के आनन्द की सीमा हिरण्यगर्भ के ऐश्वर्य में परिसमाप्त होती है। आनन्दोत्कर्ष की इसे ही अवधि समझना चाहिए। चक्रवर्ती राजा और हिरण्यगर्भ के बीच में रहने वाले जो मनुष्य-गन्धर्व आदि समस्त जीव हैं, उन्हें पूर्वकृत अधिक पुण्य के अनुसार अधिक सुख प्राप्त होता है। प्राक्तन सुकृत जितना अधिक होगा, आनन्द भी उतना ही उत्कृष्ट होगा। सर्वकामना-रहित होने से ज्ञानी मनुष्य से प्रजापति लोक तक के समस्त प्रकार के सुखों को भोगता है। यही तत्ववेत्ता की पूर्वोक्त सर्वाभीष्ट प्राप्ति या ब्रह्मानन्द लाभ है।" प्र०—"तब तो यह ब्रह्मानन्द तारतम्ययुक्त सुख हुआ।" उ०—"नहीं, यह आनन्द आधार-आधेय-भाव से वर्जित, समरस, सुखघन, अद्वय ब्रह्म पदार्थ है। जिज्ञासु

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पुरुष में स्थित (आध्यात्म), तद्भिन्न ब्रह्मा से तृणपर्यन्त सर्वभूत में अवस्थित (अधिभूत) और आदित्य अदि देवताविषय में वर्तमान (अधिदेव) इस त्रिविध नामभेद से एक अद्वितीय, रसरूप ब्रह्मानन्द ही अखण्ड, निर्विभागरूप में स्थित है। सर्वकामना-सिद्धि इसी निर्विशेष ब्रह्मसुख को ही लक्ष्य करती है। यह व्यष्टि या समष्टि आनन्दमय (मनुष्यानन्द से हिरण्यगर्भानन्द पर्यन्त) नहीं, अपितु प्रत्यगानन्द स्वरूप है। यह प्रजापति के आनन्दमय से अत्यन्त उत्कृष्ट है और केवल ज्ञान से ही मिलता है। आनन्दमय को ब्रह्मरूप से उपासना ही ज्ञान की सहायक या द्वार रूप है, यह पहले बताया जा चुका है। सारांश यही है कि आत्मब्रह्म का ऐक्यबोध होने पर सर्वोच्च प्रजापति-लोक का ऐश्वर्य तो सहज में और एक ही काल में (विषयानन्द की अवधि से लक्षित) निरवधि ब्रह्म-सुख में एकीभूत या क्रोड़ीकृत हो जाता है। अशेष सुखाकार वृत्ति के प्रकाशक आत्मा में सर्व प्रकार के प्रतिबिम्ब आनन्द कल्पित होने से ब्रह्म ही प्रत्यगानन्दस्वरूप है, आनन्दमय का आधेय आनन्द नहीं। इसीलिए हिरण्यगर्भ का आनन्द ससीम तथा विनाशशील है और ब्रह्मानन्द नित्य, पूर्ण, अभिन्न तथा एकरस है।"

प्र०—"यह असीम सुख क्या इन्द्रादि के स्वर्गीय सुख से श्रेष्ठा है ? तत्वज्ञ के आनन्द से क्या देवताओं का आनन्द निकृष्ट है ?"

उ०—"इन्द्रादि सब देवता अपने अपने लोक से परिमित सुख को पाकर अपने को कृतार्थ मानते हैं और इसीलिये अपरिच्छिन्न ब्रह्मा-नन्द की इच्छा या उस की प्राप्ति के लिए प्रयत्न नहीं करते। परन्तु

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ज्ञानी ब्रह्मलोक के भी सम्पूर्ण विनश्वर आनन्द में दोषदृष्टिपूर्वक वितृष्ण होता है और निष्काम होने के कारण मनुष्यलोक, देवलोक तथा ब्रह्मलोक के समस्त आनन्द उसे प्राप्त हो जाते हैं।" प्र०—"ज्ञानी सार्वभौम आदि के समान कैसे होता है ?" उ०—सार्वभौमादि पद की कामना न होने के कारण उस पद की प्राप्ति की समानता कही गयी है। विशिष्ट ऐश्वर्य भोग तो कामना के फलस्वरूप होता है और कामना की सफलता उन उन पदों की प्राप्ति में पर्यवसित होती है। ब्रह्मा के सुखपर्यन्त सब प्रसिद्ध विषयानन्द तृष्णा या अभिलाषा से उत्पन्न और वाञ्छित भोग में ही परिसमाप्त होते हैं। भोग हो जाने पर कुछ भी सद्वस्तुरूप में अवशिष्ट रहता हुआ देखने में नहीं आता। वाञ्छा, सुखप्राप्ति आदि कल्पित एवं क्षणभंगुर पदार्थ होने से परित्याग करने लायक हैं। फलतः निश्चल, अन्तर्मुख बुद्धि में उपलब्ध जो निरावरण आनन्दस्वरूप परमात्मदेव हैं, वे तो विचारशील पुरुष में, अन्य मनुष्य या देवता एवं नारायण सूर्य में एक, 'अभिन्न रूप में विराजमान हैं। प्रत्येक सुखस्वभाव ब्रह्म सर्वत्र सर्वात्मरूप में एक रस स्थित होने से सार्वभौमादि और ज्ञानी में भेद कैसे रह सकता है ? कल्पनाप्रसूत भेद अवास्त होने के कारण युक्ति से ब्रह्मज्ञ पुरुष, चक्रवर्ती राजा तथा देवता आदि समान सिद्ध होते हैं। तत्वदृष्टि में तो विवेकी साक्षात् ब्रह्मरूप ही होने के कारण प्रजापति से अनन्तगुना उत्कृष्ट है।"

प्र०—"ब्रह्मानन्द के एक होने का कारण क्या है ?" उ०—"भिन्न भिन्न या खण्डित होने पर एकरसता की हानि होती है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जो स्वगत, सजातीय तथा विजातीय भेदशून्य नहीं है, वह निरतिशय प्रेम का आस्पद नहीं हो सकता। निरावरण, अकृत्रिम एवं अन्तरंग आत्मसुख तो पूर्वोक्त प्रकार से तथा व्यभिचरित रूप से सर्व प्राणियों को अत्यन्त प्रीति का विषय देखा जाता है। अतएव आनन्द का उपाधिकृत तारतम्य (विशेषता) दिखलाई पड़ने पर भी उपहित या लक्षित ब्रह्मानन्द अखण्ड एकरस होने के कारण अद्वितीय और निर्विशेष वस्तु है।" प्र०—"ज्ञान की प्रतिष्ठा या पर्यवसान कहाँ है ? उ०—"ज्ञान की परिसमाप्ति या अन्तिम भूमि इस समरस प्रत्यगानन्दस्वरूप की प्राप्ति या अकृत्रिम आत्मसुख विश्रान्ति है। आत्मैक्यज्ञान द्वारा तत्ववेत्ता इस परिपूर्ण दृश्यरहित, अभिन्न, ब्रह्मानन्द में ही प्रतिष्ठित होता है, पुत्रदारादि की अनुरञ्जना, सांसारिक चिन्तन या व्यापार में नहीं।" प्र०—"इसका क्या कारण है ?" उ०—"मनुष्यगन्धर्व, आजानज कर्मदेव, इन्द्र, वृहस्पति और विराट् इनका आनन्द पूर्व पूर्व की अपेक्षा उत्तरोत्तर शतगुणित अधिक होता है। सार्वभौम से ब्रह्मा के सुखपर्यन्त आत्मानन्द का अत्यल्प तुच्छ अंशमात्र होने के कारण स्वानन्द चिन्मात्र में अवस्थान ही ज्ञान का उत्कृष्ट फल होना युक्तियुक्त है। सर्वसंकल्पशून्य, समस्त सुखाकार वृत्ति के तथा उसके अभाव के साक्षी, अशेष संशयादि विकार के आविर्भाव के प्रशम में निर्विकाररूप में अवस्थित एवं सकल अवस्था के अवभासक इस अकृत्रिम सर्वान्तर परमात्मसुख की सीमा का निर्देश नहीं किया जा सकता या सोचा भी नहीं जा सकता।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चिन्ता या इच्छा के उदय के पहले भी तो यह अन्तरङ्ग आत्मसुख भास्वररूप में प्रकाशमान है, जिसके प्रसाद से चित्त की चिन्ताशून्य अवस्था भी स्वयं जानी जाती है। इन्द्रिय तथा मन के अगोचर इस ब्रह्मानन्द का अभिन्नरूप में साक्षात्कार करके विवेकी पुरुष समस्त जन्म-मरण आदि दुःखों से सदा विमुक्त एवं निर्भय हो जाते हैं।" प्र०—"परलोक के लिए पाप तथा पुण्य की चिन्ता तो ज्ञानी भी अवश्य करेगा ही।" उ०—"पुण्य क्यों न किया, पाप क्यों किया? ऐसी चिन्ता अज्ञानी को सन्तप्त करती है। सम्पूर्ण चिन्ताओं से शून्य निर्वासनिक ज्ञानी को पीड़ा या क्लेश देने में कोई भी समर्थ नहीं होता।" प्र०—"ज्ञानी क्या करता है?" उ०—"धर्म-अधर्म में अभिमान या सत्यत्वबुद्धि का परित्याग कर (उनके करने या न करने में मन न लगाकर) परोक्ष ब्रह्मवेत्ता (या अदृढ़ अपरोक्ष ब्रह्मवेत्ता) ब्रह्मविषयिणी बुद्धि की दृढ़ता सम्पादन करता है।" प्र०—"अदृढ़ ज्ञानी जीवन्मुक्त कब होता है?" उ०—"ब्रह्मज्ञ देहेन्द्रियकृत पुण्यपाप को सदा आत्मरूप में देखता है। भोक्ता-भोग्य, प्रत्यक्-पराक् सर्व प्रपञ्च में आत्मबुद्धि करके स्वकीय सर्वात्मभाव के ध्यान तथा अभ्यास में निरत रहता है। इस तरह जीवित अवस्था में ही ब्रह्मात्म-विषयक अप्रतिबद्ध अपरोक्ष साक्षात्कार द्वारा वह मुक्त होता है।" प्र०—जिस ब्रह्मज्ञान से इस लोक में मुक्ति प्राप्त होती है, उसका प्रधान साधन क्या है?" उ०—"जीवन्मुक्तिप्रद ब्रह्मविद्या का मुख्य साधन ब्रह्मविचार है, जिसके द्वारा भृगु ने ब्रह्मसाक्षात्कार किया था।" प्र०—"विचार का स्वरूप क्या है?" उ०—बाह्य इन्द्रियों को

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उन-उन विषयों से लौटाकर अन्तःकरण को प्रत्यग्ब्रह्म में स्थापन करने का नाम है ज्ञानमय तप या विचार यही मन और इन्द्रिय की एकाग्रता है। समस्त धर्मों में यह तपोरूप धर्म सर्वश्रेष्ठ है, ऐसा शास्त्रों में तथा सज्जनों के द्वारा बहुशः प्रशंसित है। इसी चित्त की एकाग्रता से आनन्द को ब्रह्मरूप में जानकर भृगु कृतार्थ हुए थे।"

प्र०—"विचार तत्वचिन्तन को कहते हैं या समाधि को ?"
उ०—तप या समाधान आलोचनात्मक है, अतः उसका प्रत्यक्तत्त्व चिन्तापरक होना ही उचित है। महावाक्य के अर्थज्ञान के लिए त्वं पद का शोधन अत्यन्त आवश्यक है। गुरुद्वारा उपदिष्ट ब्रह्म के लक्षण का उपयोग भी क्रमशः पञ्चकोश से आत्मतत्त्व के विवेचन या पृथक्करण में ही होना सम्भव है। विचार या विमर्श की सहायता के विना जिज्ञासु भृगु की ब्रह्म निर्णयपूर्वक जिज्ञासा की निवृत्ति कैसे हो सकती ?" प्र०—अन्य ग्रन्थों में भी क्या ध्यानानुकूल मनन को ही तप कहा गया है ?" उ०—"हाँ, पहले तत्त्व का निश्चय न होने से तत्फलस्वरूप निदिध्यासन भी सम्भव नहीं हो सकता, इसीलिए पर्यालोचना अत्यन्त उत्कृष्ट साधन बतलायी गयी है। वार्तिककार श्रीसुरेश्वराचार्य कहते हैं कि इन्द्रिय तथा मन का निग्रह करकें अन्वय-व्यतिरेक आदि उपाय से प्रत्यक्तत्त्व का चिन्तन करने का नाम 'तप' है, क्योंकि इसी के द्वारा आत्मब्रह्म का एकताज्ञान सम्भव हो सकता है। परमेश्वर ने भी 'सूतसंहिता' में कहा है कि "मैं कौन हूँ ? कैसे मुक्त होऊँगा ? संसार (जीवदशा) को कैसे प्राप्त हुआ हूँ" इस तरह की आलोचना को

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शास्त्ररहस्यज्ञ पण्डित 'तप' कहते हैं।" प्र०—"योगी जो प्रत्यगात्मा का (प्रणव-लक्षित का) परब्रह्मरूप में ध्यान करते हैं, उसमें उनको नित्य नैमित्तिक कर्मों के अकरण से क्या प्रत्यवाय न होगा ?" उ०—"अभाव से भाव की उत्पत्ति नहीं होती, अतः अकरण (न करने) से पाप कैसे होगा ? फिर संन्यासी के लिए स्वरूपचिन्तन ही महायज्ञ के सदृश है। दिन और रात्रि दर्शादि याग के पुण्यकाल के समान है, उसका सम्पूर्ण जीवन ही सत्र के तुल्य है। अतएव योगी जनों के श्रद्धालु सेवक भी मोक्षप्राप्ति के अधिकारी होते हैं।" प्र०—"यदि ध्याननिष्ठ योगी को वर्तमान शरीर में साक्षात्कार प्राप्त नहीं होता, तो उसकी गति क्या होती है ?" उ०—"उक्त वैराग्यशील संन्यासी की मृत्यु यदि उत्तरायण में होती है, तो आदित्य द्वारा हिरण्यगर्भलोक में जाकर वह मुक्त हो जाता है। दक्षिणायन में मृत्यु होने पर चन्द्रलोक को प्राप्त होकर योगभ्रष्ट पुरुष पुनः मनुष्यलोक में आते हैं और कालक्रम से ब्रह्मसाक्षात्कार करके मुक्तिलाभ करते हैं।"

छन्दोग्य उपनिषद

प्रजापतिविद्या

किसी समय ब्रह्मलोक में प्रजापति ने कहा था कि विकार-शून्य आत्मा का अनुसन्धान करना सब मुमुक्षुओं का कर्तव्य है। उस आत्मा के सम्बन्ध में बतलाया गया कि वह निष्पाप, अजर, मृत्यु से रहित है। उस में शोक, क्षुधा, तृष्णा नहीं है। उस की

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कामना और संकल्प सदा सत्य होते हैं। वह ईश्वर एवं संसार रहित है। इन सबका कारण बतलाते हुए कहा गया कि जो कर्ता है, उस में दुष्कर्म या पाप को संभावना होती है। अकर्ता तथा प्रकाशस्वरूप होने से आत्मा में पाप नहीं रह सकता। जरा, मृत्यु देह के धर्म हैं, चिन्मात्र आत्मा में उक्त विकारों का प्रभाव पड़ना सम्भव नहीं है, शोक मन का धर्म है, क्षुधा, तृष्णा प्राण के धर्म हैं, आत्मा शुद्ध चेतनस्वरूप है, अतः उसमें शोकादि नहीं रह सकते। इस पर कहा जा सकता है कि "जब आत्मा चैतन्यस्वरूप बतलाया गया है, तब उसमें कामना और संकल्प कहाँ से आये ?" परन्तु इस का उत्तर यह है कि अद्वैत अनुभव मात्र में तो प्रश्न एव उत्तर, दोनों नहीं हैं, किन्तु सब कर्ताओं को द्वैत प्रतीति का अनुवाद करके (अज्ञानियों को आत्मबोध कराने के लिए) गुरु या शास्त्र कहते हैं कि काम सङ्कल्पकारिणी माया चिन्मात्र ब्रह्म में कल्पित रूप में विद्यमान है। इसीलिए कहा जाता है कि मायाविशिष्ट ईश्वर ही 'मैं जगत् की सृष्टि करता हूँ' ऐसी अनेक इच्छाएँ करता है।"

इस विषयय में आगे सुविधा के लिए प्रश्नोत्तररूप में विचार किया जायगा। प्रश्न—"मायावी परमात्मा का संकल्प कैसा है ? क्या वह सत्य है ?" "उत्तर-पूर्व कल्प में जैसे आकाशादि प्रपञ्च था, वैसा ही इस कल्प में भी हो जाय, यही ईश्वरीय संकल्प का रूप है। सङ्कल्पित जगत् की पारमार्थिक सत्यता नहीं है, वह व्यवहार काल में या अज्ञानदशा में ही सत्यरूप से भासित होता है।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

'आत्मा का अन्वेषण करना उचित है' इस का तात्पर्य यह है कि माया और उसके कार्य द्वारा असन्दिग्धरूप में ज्ञापित या लक्षित परमात्मा का अनुसन्धान किया जाता है। शास्त्र द्वारा और गुरुमुख से श्रवण करके उसे जाना जा सकता है। इस मननात्मक अवधारण या निश्चय को आत्मा का अन्वेषण कहा जाता है। परोक्ष बोध के उपरांत बुद्धिवृत्तिनिरोधपूर्वक साक्षात् अनुभव द्वारा आत्मा का विशेष रूप से जाना जाता है।

प्र०—"बुद्धिवृत्ति का निरोध किसे कहते हैं?" उ०—बुद्धि का अखण्डाकार में आकारित होना या शुद्ध सात्विक एवं अखंडित रूप में स्थित होना निदिध्यासन या निरोधाभ्यास कहा जाता है। उस अवस्था में बुद्धि के विषयरूप में कोई ध्येय पदार्थ नहीं रहता, वह केवल निज, वास्तव स्वयंप्रकाशमान चैतन्यरूप में परिणत हो जाता है। यह अन्तःकरण की अन्यनिरपेक्ष, स्वायत्त एवं अयत्नसिद्ध संविद्रूप में स्थिति है। यह बुद्धि की सहज ज्ञानावस्था है, जिस में किसी विषय का चिन्तन, भीतर-बाहर कल्पना या अन्य प्रकार की भेदभावना नहीं है और जो स्वयं परिज्ञात या निजालोक में उद्भासित होती है।" प्र०—"संक्षेप में इसे एक बार फिर बताइये?" उ०—अन्तर्दृष्टि सम्पादित होने पर ही वेद्यरहित संवित् का सहज में ज्ञान होता है।" प्र०—"अन्तरङ्ग दृष्टि' और 'प्रकाश्य विषय के विना आत्मा की प्रकाशमानता' का अभिप्राय क्या है?" उ०—"बाह्य प्रवृत्ति का परित्याग करके भीतर निश्चिन्त एवं शान्त होने पर अन्मुंखता प्राप्त होती है। अन्तर्दृष्टि होने पर स्वरूप दर्शन होता है। मन की संकल्पशून्य

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अवस्था ही अन्तर्मुखता है। निःसंकल्प होकर स्वरूपाभिमुख होने पर आत्मविचार भी छोड़ देना पड़ता है। फलतः बुद्धि बोधरूप में परिणित हो जाती है। परिणाम भाव का भी अभाव हो जाने पर सर्वाधार, सर्वप्रकाशक, निर्विषय परमात्मा समाधि करनेवाले के स्वकीय वास्तवरूप में अवशिष्ट रहता है। जो वृत्ति के अभाव का भी ज्ञाता या साक्षी है, उसका प्रकाशित होना कैसे बाधित किया जा सकता है? (चैतन्यस्वरूप ज्ञाता न हो, तो विषयों का अभाव कौन जानेगा?) जो सब निषेधों की अवधि है, वही साक्षी या परमात्मा है। वह निषेधकर्ता का स्वयं परिज्ञात निजात्मा हो जाता है, अतः सदा भासमान संवित्तत्व का बाध कदापि सम्भव नहीं है।"

प्र०—"आत्मानुभव किस क्रम से प्राप्त होता है?" उ०—युक्ति की सहायता से मनन और इसके उपरांत ध्यान करने से वह निर्विकल्प ज्ञान प्राप्त होता है। श्रवणादिपुरःसर जो आत्मा का प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं, वे स्वर्ग, ब्रह्मलोक आदि समस्त लोक तथा वहाँ रहने वाले सब भोगोंको प्राप्त कर लेते हैं। इसका कारण यह है कि ज्ञानवान् पुरुष मायाकल्पित सत्य आदि समस्त लोकों का अधिष्ठान हो जाने से सर्वलोक स्वल्प कहे जाते हैं।" प्र०—"ज्ञानी सकल काम्य वस्तुओं को कैसे प्राप्त कर लेता है?" उ०—"अखिल विषयानन्द स्वात्मानन्द का एक कण मात्र है, अतः पूर्णानन्द में स्थित पुरुष को सर्व कामनायोग्यपदार्थ सहज में प्राप्त हो जाते हैं। आनन्दस्वरूप साक्षी भोक्ता, भोग एवं भोग्य वस्तुओं का प्रकाशक है और

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वास्तव में त्रिपुटी यद्यपि चैतन्यात्मा में अपने परिच्छिन्नरूप में विद्यमान नहीं रह सकती, तथापि आत्मा ही परमोत्कृष्ट प्रेमास्पद वस्तु है (और इसीलिए अकृत्रिम आनन्दस्वरूप है) यह जानने के लिए स्वसुखरूप एवं विषयरहित आनन्दघन आत्मतत्त्व में समस्त विनश्वर विषयसुखों का स्वाभाविक अन्तःप्रवेश या एकीभाव—मनन के सहायकरूप में-युक्ति के साथ बतलाया गया है।"

यहाँ तक प्रजापति ने अपनी सभा में देवता एवं असुरों को उपदेश दिया। सुरेश्वर इन्द्र और असुरराज विरोचन, दोनों आत्मज्ञान की अद्भुत महिमा सुनकर आत्मा को जानने के लिए उत्सुक हुए और सत्यलोक में जाकर वहाँ सत्यदेव की सेवा में प्रवृत्त हुए। बत्तीस वर्ष की सेवा से प्रसन्न होकर प्रजापति ने दोनों शिष्यों को नेत्रद्वारा उपलक्षित आत्मतत्व का उपदेश किया।

प्र०—"अक्षिलक्षित आत्मा कैसा ?" उ०—जाग्रत अवस्था का प्रकाशक होने से आत्मा नेत्र में स्थित कहा गया है। वह पूर्ण है, अतः पुरुष या परमात्मा कहा जाता है। त्वचा आदि में रहने पर भी चक्षु में साक्षीरूप में परमात्मा की स्थिति को तत्वदर्शी पुरुष स्पष्टरूप से उपलब्ध करते हैं।" प्र०—"यह साक्षी क्या जीव है ?" उ०-मूढ़ लोग चेतन के प्रतिबिम्ब से युक्त (चेतनावान्) जिसे—मैं कर्ता-भोक्ता हूँ—ऐसा जानते हैं, वह जीव जाग्रत्-साक्षी नहीं है, पर चक्षुरूप उपाधि में विद्वज्जनों से अनुभूयमान जो प्रकाशस्वरूप परब्रह्म है, वही साक्षी कहा गया है। मृत्युरहित होने के कारण ब्रह्म अमृत कहा गया है और अद्वितीय होने के कारण—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भीतिका कारण न रहने से—निर्भय कहा गया है।"

प्रजापति की इस उक्ति का मर्म इन्द्र या विरोचन किसी को समझ में न आया, क्योंकि राज्यवासना से उनका चित्त राजसिक (चञ्चल, व्याकुल) था, इसीलिए आत्मा का रहस्य वे यथार्थरूप में समझ नहीं सके।

प्र०—"तब उन्होंने उक्त उपदेश का अर्थ किस रूप में ग्रहण किया?" उ०—"दूसरे देह का प्रतिबिम्ब ही नेत्र में दिखलाई पड़ता है, उसी को प्रजापति ने आत्मा बतलाया है, बस यही इन्द्र तथा विरोचन ने स्थिर किया।" प्र०—"अवधारित अर्थ ठीक है या नहीं, इस सम्बन्ध में क्या उन्होने कोई प्रश्न नहीं किया?" उ०—"नेत्र में अन्य शरीर का जो प्रतिबिम्ब पड़ता है, वही आत्मा है, इसी भाव को दृढ़ करने के लिए उन्होंने ब्रह्मा से प्रश्न किया—"आप ने नेत्र में स्थित जिस आत्मा के सम्बन्ध में बतलाया, वही तो जल या दर्पण में दिखलायी पड़ने वाली छाया या प्रतिबिम्ब है न?" प्र०—"तब तो ब्रह्मा ने उनकी भूल का निराकरण अवश्य ही कर दिया होगा?" उ० नहीं, उनके विपरीत ज्ञान को जान करके भी उन्होंने इसका संशोधन नहीं किया, क्योंकि ऐसा करने पर सभा में मानभङ्ग होने से उन दोनों की बुद्धि का नाश होता और वे किसी तरह तत्त्वज्ञान प्राप्त न कर सकते।" प्र०—"तब कैसे ज्ञान प्राप्त हुआ?" उ०—"प्रजापति ने सोचा कि अलंकार सहित और अलंकाररहित, दोनों तरह से जलपूर्ण पात्र में भिन्न भिन्न प्रतिबिम्ब देखने से वे समझ सकेंगे कि छाया अपना

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वास्तविक स्वरूप नहीं हो सकती।" प्र०—"क्या इस दृष्टान्तरूप उपाय से आत्मबोध हुआ ?" उ०—युक्तिरूप दृष्टान्त तथा उपदेश-रूप दार्ष्टान्तिक का यथायोग्य विवेचन करने पर आत्मतत्व का ज्ञान होता ही है। नेत्र में स्थित परमात्मा अन्यत्र सब स्थानों में भी विराजमान है, इसलिए यह साक्षी आत्मा परिवर्तनशून्य एवं एक रूप में अवस्थित है। किन्तु प्रतिबिम्ब तो शरीर के-नख केशादियुक्त या वियुक्त-भिन्न भिन्न रूपों के अनुसार भिन्न भिन्न होता है, अतएव वह निर्विकार निज स्वरूप (आत्मा) नहीं हो सकता, यह बात अनायास ही समझ में आ सकती है। तथापि इन्द्र एवं विरोचन की बुद्धि पापबाहुल्य से अत्यन्त मलिन थी, अतः जलपात्र में देखी हुई देहछाया को ही अपना वास्तविक स्वरूप मानकर वे प्रसन्न हो गये। आगे चलकर पापरूप प्रतिबन्ध का क्षय होने पर फिर से उपदिष्ट आत्मतत्त्व तथा जलपात्र के दृष्टान्त का विचार करके उन्हें ज्ञान प्राप्ति सम्भव होगी, ऐसा विचार कर ब्रह्मा ने उस समय उनकी उपेक्षा की। इन्द्र और विरोचन बहुत समय तक राज्य त्याग और कष्ट-सहन से घबरा गये थे, वहाँ से उन्होंने जल्दी से अपने अपने राज्य की ओर प्रस्थान किया। प्रजापति ने भी सभा में घोषणा की कि "देवता एवं असुर इन्द्र तथा विरोचन को ब्रह्मा के शिष्य समझ कर और उनसे विपरीत ज्ञान प्राप्त कर नष्ट-भ्रष्ट होंगे।"

तामस स्वभाव के कारण विरोचन ने शीघ्र ही जाकर असुरों को उपदेश दिया कि देह ही आत्मा है। नेत्र में जो प्रतिबिम्ब

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पड़ता है, वह आत्मदेह से उत्पन्न होता है, अतः प्रजापति का आशय यही है कि देह ही आत्मा है। इसलिए हे असुरों? आपलोग अपने-अपने देह की ही आत्मा के रूप में पूजा करो। देह के सबल होने पर जीवितावस्था में भोगसुख मिलेगा और मृत देह की पूजा होने से मनुष्य की मुक्ति होगी। इस समय भी प्रायः ऐसे ही निश्चय-वाला आसुरिक सम्प्रदाय जगत् में दिखलायी पड़ता है।

उधर सत्वगुणप्रधान इन्द्र स्वर्गलोक के मार्ग में जाते-जाते गुरु से प्राप्त उपदेश की आलोचना करने लगा कि "शरीर के प्रति-बिम्ब की जैसे सालङ्कारता दिखलायी पड़ती है, वैसे ही अन्धता भी तो दिखलायी पड़ती है, फिर वह देह का प्रतिबिम्ब भयशून्य ब्रह्म कैसे हो सकता है?" इस तरह मनन के फलस्वरूप उस ने असम्भावना दोष का आविष्कार किया और फिर ब्रह्मलोक में लौट आकर गुरुदेव से यही निवेदन किया। ब्रह्मा ने उससे कहा— पापक्षय के लिए फिर बत्तीस वर्ष तक तपस्या का आचरण (शम-दम-पूर्वक चित्त के समाधान का अभ्यास) करो। पूर्वोपदिष्ट तत्व फिर से तुम्हें समझाऊँगा।"

"जाग्रत अवस्था में शरीर से आत्मा के अभेद की शङ्का होना सम्भव है, अतः जाग्रतसम्बन्धी आत्मा का उपदेश न कर स्वप्न-काल में जिसके विचरण करने की प्रतीति होती है, उसी प्रकाश-मान साक्षी को आत्मा जानो" ऐसे स्वप्नकालीन आत्मतत्व का उप-देश प्रजापति ने इन्द्र को दिया। देह की अन्धता, कृशता इत्यादि दोष शरीर के प्रतिबिम्ब में देखे जाते हैं, पर स्वप्न में वे नहीं होते, यह जानकर इन्द्र ने सन्तुष्ट होकर पहले की तरह वहाँ से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रस्थान किया।

मनन के परिणामस्वरूप स्वप्नकाल में आत्मा में चोर-व्याघ्रादि से नाश के भयरूप अन्य दोष का उद्भावन करके इन्द्र फिर सत्य-लोक में लौट आये और उन्होंने प्रजापति से सब निवेदन किया। स्वप्नदर्शन के समय भी वासनामय शरीर से आत्मा का (अपना) अभेद भ्रम होना सम्भव है, इसलिए "सुषुप्तिकाल में अवस्थित साक्षी ही आत्मा है" बत्तीस वर्ष सेवा कराने के उपरान्त इन्द्र को ब्रह्मा ने ऐसा उपदेश दिया। सन्तुष्ट होकर पहले की तरह चले जाने पर इन्द्र ने स्वप्न-रहित निद्राकाल में आत्मा में जड़तारूप दोष देखा और उस समय अपने को विनश्वर-सा जानकर फिर लौटकर गुरु से विनयपूर्वक यह निवेदन किया।

क्षीणपाप होने के कारण इन्द्र अमूर्त कारणशरीर को जानने में सक्षम हुआ है, यह जानकर गुरु आनन्दित हुए और इन्द्र से कहा—"अवशिष्ट पाप का क्षय करने के लिए और पाँच वर्ष तक तुम सेवाव्रत पालन करो।" उक्त व्रत का पालन कर लेने के उपरान्त गुरु ने इन्द्र को स्पष्टभाव से उपदेश दिया कि हे मघवन्! तुमने आत्मा को जिस शरीररूप में ग्रहण किया है, वह त्रिविध—स्थूल, सूक्ष्म तथा (अज्ञानरूप) कारण—शरीर तो विनाशशील है। जिस शरीर में अविनाशी आत्मतत्व ने जीवरूप में प्रवेश किया है, वह तो भोग का अधिष्ठानमात्र है। यह त्रिविध देह आत्म-स्वरूप नहीं हो सकता।"

प्र०—"तब फिर आत्मा का स्वरूप क्या है?" उ०—जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति में स्थूल, सूक्ष्म एवं कारणशरीर को जो प्रकाश

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

देता है, वही सर्वदा भासमान साक्षी तथा आत्मा है। सुख-दुःख समस्त विकारों से विवर्जित होने के कारण वही ब्रह्म है।" प्र०—तब भोक्ता जीव कौन है ?" उ०—आत्मा का जो प्रतिबिम्ब जो इस देह में प्रविष्ट हुआ है, वह जीव कहा जाता है। 'आत्मा भिन्न-भिन्न शरीररूप में प्रतीयमान होता है' यह अन्य श्रुतिवाक्य प्रतिबिम्बरूप के प्रवेश-विषय में प्रमाण है। यह जीव तीन शरीर में अभिमान [एकरूपता अङ्गीकार] करके देह विशिष्ट हुआ है, अतएव कर्मफलरूप सुख तथा दुःख उसे अवश्यमेव भोगना पड़ता है।" "प्र०—"कर्ता और साक्षी में क्या भेद है।" उ०—साक्षी शरीर से रहित (अशरीर) है, अतः उसे सुख और दुःख (प्रिय और अप्रिय) स्पर्श नहीं कर सकते। कर्ता जीव में संसरण विद्यमान है और साक्षिचैतन्य में कोई विकार रह नहीं सकते। यही दोनों में स्पष्ट भेद है। प्र०—तब जीव अपने में दुःख क्यों मानता है ?" उ०—अपने में दुःख या सुख, उभयविध विकल्प का सर्वदा अभाव होने पर भी चैतन्यस्वभाव अपने को कर्ता एवं देहविशिष्ट निश्चय करके अज्ञानी पुरुष विपरीत बुद्धिकृत अविवेक से सुखी एवं दुःखी समझता है। देहत्रय और प्रत्यगात्मा का विवेक (स्पष्ट रूप में पृथक् ज्ञान) होने पर सदा प्रकाशमान निज आत्मा स्थूलादि त्रिविध शरीर का अभिमान त्यागकर स्वकीय सनातन, निर्गुण, निर्विकार ब्रह्मस्वरूप में अवस्थित हो जाता है।" प्र०—जीव क्या वास्तव में शरीररहित है ?" उ०—सर्वदा भासमान साक्षी आत्मा सर्वशरीरविवर्जित है। अपने उस शुद्ध चैतन्यस्वरूप का स्पष्ट स्मरण न

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रहने से वासनावशात् तीन देहों में अहम्भाव एवं ममभावरूप अभिमान आजाता है। चेतन स्वभाव का अत्यन्त अभाव न होने पर भी दृश्यसम्पर्क के कारण चिद्रूप द्रष्टा (वासनायुक्त या) मलिन हो जाने से अभिमन्तारूप में देह में स्थित होता है। अहन्तापूर्वक अभिमन्तव्य जगद्दर्शन करके सुखी, दुःखी, जन्मवान् और मरणशील हो जाता है। विषयसंस्पर्शरहित अपार सुख-स्वरूप सहज केवल निजानन्द का विशिष्ट अनुसन्धान या स्फूर्ति आवृत होकर शरीर तथा जगद्दर्शनरूप प्रत्यक्ष विशेषभाव (भ्रान्त अनुभव) उपस्थित हो जाता है।"

प्र०—"ब्रह्मभाव कैसे प्राप्त होता है ?" उ०—"विवेक द्वारा त्रिविध शरीर में से एकदम पृथक् हो सकने पर अपना वास्तविक स्वरूप पुनः प्राप्त हो जाता है। इस स्वाभाविक एवं स्वप्रकाश ब्रह्मात्मतत्व में शरीर तथा जगद्रूप द्वैत बिलकुल नहीं है। परम-प्रकाशकस्वरूप ब्रह्मभाव महावाक्यजनित साक्षात्कार-ज्ञान होनेपर उदित होता है।" प्र०—"सम्यक प्रसन्नतायुक्त आत्मा में मलिनता कहाँ से आयी ?" उ०—"निर्मल साक्षीस्वरूप में पाप, कषाय, दुःख या क्षोभरूप कलुषता की सम्भावना नहीं है। यह तो अविद्यायुक्त देहात्मभावना से उत्पन्न होती है।" प्र०—"यह आविलता कितने प्रकार की है ?" उ०—"तीन प्रकार की। जाग्रत अवस्था में स्थूल और सूक्ष्म शरीर के साथ दृढ़ एकीभाव होने से इन दोनों शरीरों की सकल आधि (मानसिक दुःख) और व्याधि (विविध मनःपीड़ाएँ जिनमें होती है, ऐसे शारीरिक रोग) अविद्याग्रस्त साक्षी (जीव) को प्राप्त होती है। यह महा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कलुषभाव है। स्वप्नावस्था में केवल सूक्ष्म शरीर का अभिमान रहने से जीव की कलुषता अल्प होती है। सुषुप्ति-काल में कुछ भी कालुष्य न रहने से जीवात्मा सम्यक् प्रसन्नता का अनुभव करता है "

प्र०—"तब क्या सुषुप्तिही मोक्षावस्था है ?"

उ०—"नहीं, कालुष्यभाव का बीजरूप अज्ञान निद्रावस्था में अवशिष्ट रहता है, अतः सुषुप्ति अवस्था में कृतार्थता नहीं हो सकती। विवेक आविर्भूत होनेपर दृढ़ अभ्यास द्वारा देहादि में से अभिमान परित्याग करके साक्षी आत्मा (या तत्स्वरूप में अवस्थित मुमुक्षु जीव) निर्बीज भूमिका में परम प्रसन्नता प्राप्त करता है।"

प्र०—"ध्यान या योग के रहने पर विवेक या ज्ञान का क्या प्रयोजन है ?"

उ०—"सांख्ययोग आगे की भूमिका है। स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण देह से अन्तरात्मा का पृथक्ज्ञान उत्तम रूप से उत्पन्न होते ही शरीर का अभिमान (अहन्ता और ममताभाव) विनष्ट हो जाता है और मुमुक्षु को प्रत्यगात्मा का प्रत्यक्ष अनुभव आविर्भूत होता है, अन्यथा नहीं। इसीलिये त्रिविध देह से अपने साक्षिस्वरूप का सम्यक् विवेचन (देह से 'मैं' अभिन्न हूँ, ऐसी अभेद भावना का त्याग) विना हुए नित्य, परिपूर्ण निजानन्द का साक्षात् ज्ञान कदापि सम्भव नहीं है।"

प्र०—'महावाक्य-समूह का क्या अर्थ है ?"

उ०—"आत्मस्वरूप के विवेचन द्वारा जिस मुमुक्षु ने देह सम्बन्धी अभेदभ्रम का परित्याग किया है. उसके जीवत्वभाव की

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आत्यन्तिक निवृत्ति के लिए "तत्त्वमसि" इत्यादि महावाक्य 'यह विवेकी पुरुष वास्तव में ब्रह्म स्वरूप ही है, अन्य कुछ नहीं' यही अति प्रयत्नपूर्वक बोधन करते हैं।"

प्र०—"प्रजापति के इस वर्तमान उपदेश का तो पूर्वकथित वाक्य से विरोध प्रतीत होता है ?"

उ०—"ईश्वर एवं गुरु के वचन में पूर्वापरविरोध कैसे हो सकता है ? नेत्र में साक्षीरूप से अवस्थित कहकर पहले जिस आत्मतत्व का उपदेश किया गया है, वही (उत्तम मुमुक्षुरूप जीवोपाधि में प्रविष्ट होकर) महावाक्यार्थजनित बोध प्राप्त करके चिन्मात्र ब्रह्मभाव में प्राप्त होता है और 'उत्तम पुरुष' इस नाम से शास्त्र में कहा जाता है।"

प्र०—"ब्रह्म को उत्तम पुरुष क्यों कहा जाता है ?"

उ०—"कारण (अज्ञान) और कार्य (देह) इन दोनों से श्रेष्ट होने से आत्मब्रह्म उत्तम कहा जाता है। यही जीव भावापन्न ब्रह्म जीवस्वभाव का परित्याग करके अपना चिरन्तन, शुद्ध चिदानन्द स्वरूप प्राप्त होने के कारण इसकी उत्तमत्ता युक्तियुक्त ही है।"

प्र०— 'इस निरुक्ति का प्रमाण क्या है ?"

उ०—"भगवद्वचन ही इस विषय में उत्कृष्ट प्रमाण है। 'गीता' में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है कि क्षर एवं अक्षर नाम के दो पुरुष इस संसार में प्रसिद्ध हैं। समस्त विनश्वर कार्यसमूह 'क्षर' और परमेश्वर की मायाशक्ति (कारणउपाधि या अव्यक्त) 'अक्षर' कही गयी है (क्योंकि संसार का वीज अनन्त है, वह ब्रह्मज्ञान के

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बिना नष्ट नहीं हो सकता)। क्षर एवं अक्षर, इस उभय जड़राशि से भिन्न नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त परिपूर्ण स्वभाव परमात्मा (कार्य एवं कारणरूप दोनों उपाधियों से पर होने के कारण) 'पुरुषोत्तम' कहा गया है।"

प्र०—"परमात्मा शब्द का क्या अर्थ है ?"

उ०—"अविद्याकल्पित मिथ्याआत्मरूप अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय तथा आनन्दमय से उत्कृष्ट, पञ्चकोश का प्रत्यक्चेतन (आभ्यन्तर प्रकाशक) और जीव के मुख्य आत्मा को वेदान्तशास्त्र में 'परमात्मा' कहा गया है। यही परमेश्वर अपनी मायाशक्ति में अधिष्ठित होकर निर्विकाररूप में अखिल विश्व का नियमन करते हैं।"

प्र०—"परमेश्वर को प्रकाशस्वरूप कहने का तात्पर्य क्या है ?"

उ०—"परमात्मा अदित्यवर्ण है और अन्धकार से अति दूर है। दृश्य या प्रकाश्य वस्तु अन्धकार कही गयी है। परमात्मा शुद्ध द्रष्टा या प्रकाशक है। उसमें स्थूल, सूक्ष्म, अहंभाव, त्रिपुटी या किसी प्रकार की (अविद्या या अन्तःकरण की) वृत्ति अथवा दृश्य नहीं रह सकता। वह केवल साक्षी या दृश्यमात्र स्वरूप में 'कुछ नहीं है' ऐसी अविद्या (सुषुप्ति काल में अनुभूत) का अभावात्मक विकार या परिणाम भी नहीं है। पञ्चभूत, मन, व्यष्टि बुद्धि, महत्तत्व और माया इस समस्त दृश्यवर्ग का वही अन्तरम आधार एवं प्रकाशक है। सर्वाश्रयभूत होकर भी वह सर्वशून्य तथा सर्व-भिन्नरूप में स्वयं देदीप्यमान है। इस बाधरहित निरूपाधि संवित का नाम सर्वज्ञ, सर्वावभासक एवं परमेश्व पुरुषोत्तम है।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्र०—"अच्छा, उत्तम पुरुषरूप परमात्मा तो मूढ प्राणी में भी विद्यमान है, फिर तत्ववेत्ता की विशेषता क्या है ?"।

उ०—"ब्रह्म निजी यथार्थ स्वरूप है, यह जानकर सर्व प्राणियों में अवस्थित आत्माको अनन्य भावसे देखना ही तत्वदर्शी की विशेषता है। अज्ञ जन देह को अपना निजी स्वरूप समझते हैं, ज्ञानी लोक दृश्य स्थूल शरीरको आत्मभाव से न देखकर अपने से अत्यन्त भिन्न ही जानते हैं। शरीर से दृढ़ एकताभ्रान्ति के फलस्वरूप अज्ञानदशा में जीव दुःख का अनुभव करता है। विवेक द्वारा अभेदभाव की शान्ति होने पर ज्ञानावस्था में कोई दुःख नहीं रहता।' असङ्ग आत्मा का सर्वदा ही देह सम्बन्ध नहीं रहता। अतः देवराज इन्द्र के शरीर से साक्षी आत्मा की वास्तविक एक, रूपता पहले भी नहीं थी। सुतरां, ज्ञानदशा में तो दुःख का लेश भी नहीं रह सकता।

प्र०—"तब तो ज्ञानी को सुख का भी अभाव हो जायगा ?"

उ०—"शरीरजनित सुखों का ज्ञान चैतन्य स्फुरण के साथ होता है। ज्ञानी को निजीरूप में साक्षी नित्य प्रकाशमान होने के कारण आत्मवेत्ता उस निजान्तर्गत सुख में आत्मीय बुद्धि करता है। शरीरादिकृत दुःख भी साक्षी से भासित होता है, किन्तु वह पृथक वृत्ति द्वारा ग्राह्य, विजातीय, आविद्यक (मायिक या मिथ्या) होने के कारण तत्ववेत्ता उसमें सत्यताबुद्धि या स्वकीयता भाव स्थापन नहीं करता। विषयोत्पन्न आनन्द स्वसुखरूप ब्रह्म का अंशभूत होने के कारण ज्ञानी का उसमें स्वाभाविक पक्षपात या आग्रह देखा जाता है। विषयसुख, निद्रासुख, तूष्णीसुख, समाधि-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सुख, और आत्मसुखजनक वृत्तिभेद से भिन्न प्रतीत होने पर भी अखण्ड एवं निराभास आनन्द से वस्तुतः पृथक् नहीं है।"

प्र०—"इस विषय में और क्या प्रमाण है ?"

उ०—"ज्ञानी को केवल पुण्य (तज्जन्य सुखमात्र) ही प्राप्त होता है। 'देवताओं के पास पाप जा नहीं सकता' इस आशय की अन्य श्रुति में भी सर्वात्मदर्शी को सुखलाभ ही बतलाया गया है। 'प्रजाएँ जिसके लिये शोक करती हैं, दुःख उसे ही प्राप्त होता है, ब्रह्मात्मदर्शी को नहीं, इस आशय की पूर्वोक्त श्रुति में भी यही उपदिष्ट हुआ है।"

प्र०—"सर्वत्र आत्मबुद्धि होने से सुख और दुःख, दोनों ही आत्मज्ञ को प्राप्त होना उचित है ?"

उ०—"जैसे सूर्य की प्रभा अस्पृश्य चण्डालादि को स्पर्श करके भी दूषित नहीं होती, वैसे ही ज्ञानी सर्वात्मा होने पर भी देहादि से उत्पन्न दोषों से लिप्त नहीं होता। 'ब्रह्मा से स्थावर पर्यन्त सकल प्राणी मेरे निजी आत्मभूत होने से मुझे किसी से काम क्रोधादि दोष (या तत्तज्जनित दुःख) कैसे हो सकता है।" ऐसे ब्रह्मबोध में दृढ़ प्रतितिष्ठित आचार्यगणों ने पूर्वकाल में हम लोगों को उपदेश दे रखा है।"

प्र०—"ऐतिह्य प्रमाण (परम्परागत उपदेश वाक्य) के अतिरिक्त सुखमात्र के ग्रहण में क्या कोई दृष्टान्त भी है ?"

उ०—"अवश्य है, मधुकर पुष्पका केवल रसमात्र ग्रहण करता है (कण्टकादि की ओर ध्यान नहीं देता), यति गृहस्थ के दिये हुए केवल भिक्षान्न को ग्रहण करना है। (अशौचादि को नहीं।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्र०—"मूर्ख मनुष्य भी तो सुखमात्र की ही अभिलाषा करता है, तब उसे क्यों नहीं प्राप्त हो सकता ?"

उ०—इसलिये कि उसे आत्मस्वरूप का बोध नहीं हुआ है। तत्वज्ञान होने पर देहात्मभ्रम का विस्मरण हो जाता है और दुःख का अदर्शन हो जाने से सर्वदा सुख का ही अनुभव होना संभव होता है, अन्यथा नहीं।"

प्र०—"किन्तु देह में स्वकीयत्वबुद्धि का अभाव हो जाने शरीर का निर्वाह किस तरह हो सकेगा ?"

उ०—"जैसे शिक्षित योग्य अश्व दीर्घकालीन अभ्यास के फल-स्वरूप सारथी के विना भी रथ को स्वयं गन्तव्य स्थल में ले जाता है, वैसे ही इस देह की प्रवृत्ति के लिये ईश्वरकर्तृक नियोजित प्राण ज्ञानी के प्रारब्ध (फलोन्मुख) धर्मादि के अनुसार उसके शरीर के भोग स्थान में ले जाता है अर्थात् दैवपरिचालित प्राणद्वार ही शरीर भोगदेश की ओर प्रेरित और यथाकाल रक्षित होता है, इस में पुरुष का अल्प भी यत्न अपेक्षित नहीं है।"

प्र०—"देहस्थिति प्रारब्ध कर्म का अलङ्घनीय फल है, यह किस तरह जाना जाय ?'

उ०—पुरुषका प्रयत्न देहरक्षा के लिए आवश्यक नहीं है, किन्तु फलोमुख प्राक्तन कर्म ही शरीर का एकमात्र पोषक है। इस का स्पष्ट उदाहरण है गर्भस्थवालक की देहपुष्टि। यदि प्रारब्धकर्म के अवश्यम्भावी कर्मभोग केवल परगर्भ में अवस्थित शिशु के शरीर की रक्षा और वृद्धि हो सकती है, तो जीवन्मुक्त का प्रारब्ध कर्म उसके देहनिर्वाह का प्रमुख हेतु क्यों न हो सकेगा ?"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्र०—"ऐसी स्थिति में मुक्त पुरुष का विशिष्ट लक्षण सर्वदा सर्वप्रकार का आनन्दभोग ही तो हुआ न ?"

उ०—"हाँ, समाधिकाल में समस्त आनन्द अपने से अभिन्न रूप में प्रतिभात होता है और व्युत्थानदशा में भोग्यरूप में प्रतीत होता है। जीवन्मुक्त की सकल अवस्थाओं में सुख का ही उपभोग होता है, दुःख का अनुभव किसी तरह भी नहीं।"

प्र०—"यह आनन्दभोग तो सवृत्तिक होता होगा ?"

उ०—"ज्ञान के बल से पुरुष का वृत्तिपूर्वक आनन्द का भोग या निर्वृत्तिक ब्रह्मानन्द में स्थिति, यह दोनों अवस्थायें समान है। तत्त्वज्ञ की स्वस्वरूप से च्युति किसी तरह नहीं हो सकती, इस लिये ज्ञानी का व्युथान या व्यवहारदशा वास्तव में सम्भव नहीं है (यदि हो सकती है तो अज्ञ जनों द्वारा कल्पित या आरोपित ही हो सकती है)।"

प्र०—"ज्ञानी क्या सदा ही समाधि में रहता है ?"

उ०—आत्मा में सम्यक् अवस्थान बोधस्वरूप में पूर्ण जागरण या अन्तःकरण के आत्यन्तिक नाशपूर्वक परमपद प्राप्ति को उत्तम समाधि या ज्ञानपूर्वक समाधि कहा गया है। यह तो प्रबुद्ध पुरुष का अयत्नसिद्ध एवं अनपहरणीय स्वभाव है। लौकिक समाधि या व्युत्थान क्रियात्मक अथवा वृत्यात्मक है। समस्त विकल्प के विनष्ट हो जाने पर बाधित मनोवृत्ति से भिन्न और विकल्प-निरसन के प्रकाशकरूप में जो नित्य भासमान तत्त्व अवशिष्ट रहता है, वह एकरस एवं विजातीय प्रत्ययशून्य होने के कारण उसमें कोई अज्ञानमूलक वृत्ति या आभासरूप स्पदन नहीं रह सकता। चित्त

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चित्तत्त्व में विलीन होकर चिद्रूप में परिसमाप्त हो जाने से जीवन्मुक्त के देह, इन्द्रिय, प्राण एवं बुद्धि के स्वाभाविक विकार या व्यवहार दग्ध पट की तरह केवल अवभासित मात्र होते हैं। योगरत या भोगरत देह इन्द्रिय आदि में आत्मीय बुद्धि न होने से मुक्त पुरुष सर्वदा समाहित कहा जाता है। जैसे अग्नि अपने उष्णता, प्रकाशादि स्वभाव का किसी तरह परित्याग नहीं कर सकता, वैसे ही स्थितप्रज्ञ पुरुष व्यवहारकाल में भी आत्मस्वरूप से च्युत नहीं होता।"

प्र०—"क्या जाग्रत, सुषुप्ति और समाधि में भेद नहीं है?"

उ०—"पदार्थ-दर्शनकाल में तदाकार अन्तःकरण-वृत्ति उत्पन्न होती है। निद्राकाल में अविद्याका सूक्ष्म परिणाम अवशिष्ट रहता है और निर्विकल्प समाधि में एकरस साक्षी आत्मा का अनुभव होता है। इन तीन अवस्थाओं का भेद वेद्याकार वृत्ति से उद्भूत होने के कारण औपाधिक या आरोपित मात्र है। संपूर्ण अनात्म भावना के परित्याग पूर्वक पूर्ण ज्ञान के उदय में तत्त्वज्ञ पुरुष सर्वदा और सर्वत्र (जाग्रत्, स्वप्न, सङ्कल्प, सुषुप्ति, समाधि में) परमात्म-ज्योति का ही दर्शन करता है।"

प्र०—"जीवन्मुक्त जिस साक्षी चैतन्य को स्वस्वरूप में जानता है, उसे नेत्र में स्थित क्यों कहा गया है?"

उ०—"इसीलिये, कि समस्त इन्द्रियों तथा तत्सम्बन्धी ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय रूप त्रिपुटी को यह निर्विकार प्रत्यक्चेतन ही प्रकाशित करता है।"

प्र०—'इसे जरा और स्पष्ट करके बतलाइये?"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उ०—'चिदालोक में भासित (उसमें अन्तर्भूत) होकर हो चक्षु घटादि रूपवान् वस्तु को प्रकाशित करने में समर्थ होता है। अहम्भाव द्वारा अवच्छिन्न आत्मा को 'द्रष्टा' नयन-रश्मियों के घटादि देश में गमनरूप क्रिया को 'दर्शन' और घटादि पदार्थ को 'दृश्य' कहा जाता है। पहले विषय एवं इन्द्रिय का सन्निकर्ष होने पर तदाकार (इन्द्रिय तथा अन्तःकरण की) वृत्तिका उदय होता है। यह साभास हृदयवृत्ति विषय का आवरण दूर कर देती है और इसके उपरान्त द्रष्टा द्वारा विषय प्रकाशित होता है। अन्त में 'मैं घट देखता हूँ' ऐसा 'मैं' (प्रमाता), 'घट' (प्रमेय) और 'देखता हूँ' (प्रमिति), इन तीन की सिद्धि या प्रत्यक्ष भान तो त्रिपुटी का साक्षी चेतन्य से एकीभाव हुये बिना नहीं हो सकता। बुद्धिकर्तृक निश्चिन्त ज्ञान का अनुभव चित्स्फुरण के योग बिना कैसे सिद्ध होगा ?' घटको आप नहीं देखते, मैं देखता हूँ' यहाँ 'मैं' का (प्रमातृ-चेतन या अहङ्कार का) निजस्वरूप (अहंप्रत्यय का लक्ष्यार्थ) कूटस्थ अन्तरात्मा के साथ अभेद के बिना सम्भव नहीं है (प्रत्यगात्मा ही निज प्रत्यक्षस्वरूप होने के कारण प्रमाता या साक्षी के साथ एकीभाव द्वारा विषय तथा ज्ञान प्रत्यक्ष होता है)। साक्षी को त्रिपुटी तथा इन्द्रिय का भासक इसीलिये (जागरण में नेत्र में अवस्थित) कहा जाता है।"

प्र०—"फिर क्या सब विषय साक्षीवेद्य है ?"

उ० - "चित्प्रकाश के बिना (साक्षात् या परम्परा से) भीतर या बाहर का कोई पदार्थ प्रत्यक्ष या परोक्षरूप में ज्ञात नहीं हो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सकता (पहले आत्मा का अनुभव होने के उपरान्त उसके सम्बन्ध से सब पदार्थ भासित होता)। मन की तदाकार वृत्ति की सहायता से केवल आभ्यन्तर सुखादि का और इन्द्रिय-व्यापारपूर्वक अन्तः करण. वृत्ति की सहायता से बाह्य घटादि का प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। आन्तर प्रत्यक्ष का विषय विप्रकृष्ट एवं कल्पित पदार्थ या प्रत्यक्ष के अयोग्य धर्मादि, सब साक्षीवेद्य और बाह्य घटादि, अनिर्वचनीय शुक्ति-रजतादि सब प्रमातृवेद्य कहे जाते हैं। मन सर्वत्र साधारण रूप में अपेक्षित होने पर भी रूप तथा गन्धादि के भिन्न-भिन्न ज्ञान के लिए नेत्र तथा घ्राणादि पृथक् पृथक् इन्द्रिय को भी अपेक्षा होती है।"

प्र०—"ब्रह्मा ने अन्त में इन्द्र से क्या कहा ?"

उ०—"ज्ञानादि वृत्ति और चक्षु आदि इन्द्रियों के अवभासक इस साक्षीरूप उत्तम पुरुष का उपासना द्वारा निजीरूप में साक्षात्कार करके देवगण सर्वलोक तथा ब्रह्मा के काम्य पदार्थों को प्राप्त होगें, क्योंकि आत्मतत्व का बोध होने पर सबका आत्मभूत (सर्वात्मा) हो जाया जाता है। अन्य भी कोई प्राणी यदि स्वयं प्रकाश आत्मा का गुरु एवं शास्त्र की सहायता से अन्वेषण (श्रवण) करके अपृथग्भाव से प्रत्यक्ष कर सकेगा तो वह भी देवताओं की तरह ब्रह्मलोकादि और तत्रस्थ समस्त भोग प्राप्त करेगा।"

प्र०—'इसतरह स्पष्ट उपदेश इन्द्र को ब्रह्मा ने पहले ही क्यों नहीं करदिया ?"

उ०—तपस्या के विना उपदेश का यथार्थ ग्रहण नहीं हो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सकता। इसीलिए १०१ वर्ष तक गुरुसेवा के फलस्वरूप चित्त के शुद्ध होने पर इन्द्र इस उपदेश को हृदयङ्गम कर सके। सद्गुरु समय तथा चित्तपरिपाक के अनुसार तत्त्वोपदेश करते हैं।"

प्र०—"चित्तशुद्धि किसे कहते हैं ?"

उ०—"ज्ञान के प्रतिबन्धक पाप का क्षय चित्त का शोधन कहा जाता है। सङ्कल्प-विकल्प या अनात्मभावना ही पाप या मलिनता है। शास्त्र-श्रद्धा, गुरुशुश्रूषा, और समाधान द्वारा इन्द्र ने अन्तःकरण की निर्मलता-सम्पादन करके ब्रह्मविद्या प्राप्त की और इसी अनात्मसंस्काररूप प्रतिबन्ध का क्षय न होने से विरोचन सर्वज्ञ ब्रह्मदेव का भी उपदेश पाकर यथार्थ ज्ञान-प्राप्ति से वञ्चित रह गये। शुद्धचित्त अधिकारी को दयालु सद्गुरु अनेक आयास सहन कर बारम्बार तत्वोपदेश कर उसका अज्ञान दूर करते हैं॥"

———

(२) सनत्कुमार-विद्या

इसके पहले 'प्रजापति-विद्या' में पञ्चकोश-विवेक तथा अवस्था-त्रय के विचार द्वारा साक्षी, एकरस, कूटस्थ ब्रह्मानन्द का निरूपण किया गया है। अब इस लेख में 'शब्द' 'वागिन्द्रिय' से 'प्राण' पर्यन्त अनात्मभूत विकाररूप तत्वों का क्रमशः उल्लेख करके उसकी सहायता से 'भूमा' नामक निरतिशय परमार्थ तत्व का निर्देश किया जायगा।

प्र०—"इस तत्त्वोपदेश से क्या उद्देश्य सिद्ध होगा ?"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उ०—"इस भूमा-विद्या के ज्ञान से सकल दुःखों की निवृत्ति होगी।"

प्र०—"इसे 'सनत्कुमार-विद्या' क्यों कहा गया है ?"

उ०—"छान्दोग्य उपनिषद्" के सातवें अध्याय में इस भूमा-विद्या का सनत्कुमार ने नारद को उपदेश किया है, इसलिए इसे उक्त नाम से सम्बोधित किया जाता है। इन्हों ने ही अखिल शोक-निवारण का एकमात्र साधनभूत आत्मज्ञान पहले विदुर को एवं इसके उपरान्त धृतराष्ट्र को 'सनत्सुजातीय अध्यात्मशास्त्र' में कहा है।"

'वेद, पुराण एवं विविध शास्त्रों का अध्ययन करके भी नारद आत्मज्ञान की प्राप्ति में असमर्थ होकर बहुत दुःखी हुए। इसका कारण यही है कि वेदाभ्यास के पहले आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक, इन त्रिविध तापों से दुःख होता था, शास्त्राध्ययन के बाद विद्याजनित गर्व, विद्याविस्मरण और पराजय का भय होने से दुःख की वृद्धि हुई। 'आत्मज्ञान होने से शोक-निवृत्ति होती है' श्रोत्रिय पुरुष के मुख से ऐसे वचन सुनकर नारद ने अपने बड़े भाई गुरु सनत्कुमार के पास जाकर उनसे 'मुझे दुःख से मुक्त कीजिये' ऐसी प्रार्थना की। अनेक ग्रन्थों का अध्ययन करने से नारद की शब्द-वासना प्रबल थी, इसलिए सनत्कुमार ने उन्हें ब्रह्मदृष्टिपूर्वक 'नाम' की उपासना करने का उपदेश दिया।

प्र०—"इसका क्या अभिप्राय ?"

उ०—"शब्द-वासना का परित्याग करके नारद के दृढ़ ब्रह्म-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भावना को प्राप्त हो जाने पर 'ब्रह्म ही तुम्हारा (उपासक नारद का) स्वकीय स्वरूप है' ऐसे उसे उपदेश करूँगा, ऐसा सनत्कुमार ने विचार किया।" ब्रह्मबुद्धि से 'नाम' का ध्यान मात्र करने से शोक दूर नहीं हो सकता, यह समझकर 'शब्द से श्रेष्ठ तत्त्व क्या है?' यह नारद ने जानना चाहा। नाम का कारण होने से उसकी अपेक्षा 'वाक्इन्द्रिय' श्रेष्ठ है, इसलिए ब्रह्मबुद्धि से 'वाक्' की उपासना करने का गुरु ने नारद को उपदेश दिया। ब्रह्मदृष्टि से वाङ्मात्र का ध्यान करने से शोकनिवृत्ति नहीं हो सकती, अतः पूर्ववत् क्रमिक प्रश्नपुञ्ज के फलस्वरूप 'मन' से 'प्राण' पर्यन्त उत्तरोत्तर श्रेष्ठ तत्त्वों की उपासना का सनत्कुमार ने उल्लेख किया। इसी प्रश्नोत्तर-परम्परा का तात्पर्य यहाँ दिखलाया गया।"

प्र०—"वाक् की अपेक्षा मन श्रेष्ठ क्यों है?"

उ०—"बोलने की इच्छा होने पर ही 'वाणी' प्रवृत्त होती है, अतएव वागिन्द्रिय का कारण होने से इच्छात्मक 'मन' 'वाक्' से श्रेष्ठ है।"

प्र०—"इच्छा का कारण क्या है?"

उ०—"सम्यक् सङ्कल्प करने पर इच्छा होती है, इसलिये सङ्कल्प इच्छा का कारण है।"

प्र०—"सङ्कल्प का हेतु कौन है?"

उ०—"चित्त में से कल्पना का उदय होता है, अतः 'चित्त' ही सङ्कल्प का कारण है। विक्षिप्त चित्त की अपेक्षा 'एकाग्रता' श्रेष्ठ और उस से 'ध्यान' अधिक श्रेष्ठ है। ध्यान से उपास्य तत्त्व का 'विज्ञान' उत्तम है। ज्ञान से—उसका कारण—'देहबल' उत्कृष्ट है,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वल का कारण 'अन्न' अन्न का कारण 'जल' और उसका कारण 'तेज' है। 'वायु' और 'आकाश' तेज के कारण है। ईश्वर की स्रष्टव्यविषयक 'स्मृति' आकाश का हेतु है और उक्त स्मृति का हेतु ईश्वर की सृष्टि सम्बन्धी 'कामना' है।"

प्र०—"इन सब प्रतीकोपासनाओं का क्या फल है ?"

उ०—"जो पुरुष 'नाम' से लेकर 'सृष्टि विषयक आशा' पर्यन्त तत्त्वपरम्परा में ब्रह्मभावना करता है, वह तत्तद्विषयनिर्दिष्ट भिन्न-भिन्न (अवान्तर) फल अवश्य ही प्राप्त करता है।" अहंग्रह उपासना से भिन्न जो प्रतीकोपासना है, वह अतिआयासयुक्त होने के कारण क्लेश का ही कारण होती है। इसके द्वारा तो शोक से उत्तरण होना सम्भव नहीं है, इसी अभिप्राय से नारद ने उस से भी अधिक उत्कृष्ट तत्व जानने के लिए प्रश्न किया। 'नाम' से 'आशा' पर्यन्त (निज स्वरूप के दूरवर्ती) अनात्म पदार्थ के ध्यान में और उपासना सम्बन्धी तत्तद्विषयक फल में नारद का वैराग्य एवं तज्जनित आत्मविषयक दृढ़ जिज्ञासा देखकर सनत्कुमार ने लिङ्गसङ्घात द्वारा उपहित (लक्षित) जीवतत्व (प्राण) का उपदेश किया।

प्र०—"अच्छा, नारद ने तो प्रत्यगात्मा को विशेषरूप से जनना चाहा था न ? फिर सनत्कुमार ने 'प्राण' का उपदेश क्यों किया ?"

उ०—"'प्राण' आत्मा का प्रतिनिधि होने से परमात्मा को लक्षित करता है।" किस तत्त्व के शरीर को छोड़कर जाने पर मैं भी शरीर में से उत्क्रमण करूँगा और किस तत्व के शरीर में रहने तक मैं भी स्थिर रहूँगा ? ऐसा विचार कर परमात्मा ने प्राण का सृजन किया इस आशय के श्रुतिवाक्य की सहायता से यह जाना जाता

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है कि प्राण आत्मा का प्रतिनिधि है। चक्र आरा जैसे नाभि के आश्रित रहते हैं, वैसे ही चक्षु आदि सब प्राण के आश्रित रहकर स्थित हैं, इसीलिये 'प्राण' को आत्मा कहा गया है।'

प्र०—"प्राण परमात्मा किस तरह हो सकता है ?"

उ०—"अश्व की सहायता से मनुष्य गमन करता है" "पुरुष ने ब्राह्मण को गौ दान दिया" इत्यादि वाक्यों में 'अश्व' आदि पदों से 'प्राण' ही कहा गया है, मृत शरीर नहीं।' 'पिता', 'माता' आदि शब्दों के द्वारा भी 'प्राण' ही कहा जाता है, प्राण-रहित शरीर नहीं। अतएव 'प्राण' ही सर्वात्मक (समस्त प्राणियों का स्वरूप) होने से परमात्मा का लक्षक होना युक्तियुक्त है।"

प्राणतत्त्व को इस तरह गुरुमुख से जानकर जो जिज्ञासु युक्ति की सहायता से बुद्धि द्वारा इसका विचार करता है, वह 'अतिवादी' होता है। 'नाम' से 'आशा' पर्यन्त विकार-समूह की अपेक्षा उत्कृष्ट प्राणतत्व को जो परमात्मरूप में जानता है, वह अतिवादी कहा जाता है। प्राणात्मतत्व-निरसन करने वालों से तर्क द्वारा उक्त अतिवादी निर्भीक होकर अपने पक्ष का सर्वथा समर्थन करता है, कभी अपने पक्ष का परित्याग नहीं करता, इसीलिये 'प्राण ही आत्मा है' इस विषये में सन्देह नहीं रह सकता।

प्र०—"तब तो प्राण को आत्मरूप में जानकर नारद सन्तुष्ट हो गये होंगे ?"

उ०—"नाम से लेकर 'सृष्टि की इच्छा' पर्यन्त तत्वों में (अनात्मत्व स्पष्ट प्रतीत होने के कारण) आत्मत्व-उपदेश से नारद सन्तुष्ट नहीं हो सके। उन्हों ने इनके अधिकाधिक उत्कृष्ट तत्त्व जानने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

के लिये बारंबार प्रश्न किये और प्राण के आत्मरूप में उपदिष्ट होने के उपरान्त सन्तुष्ट होकर फिर प्रश्न से उपरत हो गये। पूर्वोक्त युक्ति द्वारा प्राण की आत्मता अच्छी तरह निर्णीत हुई है और सुषुप्तिकाल में भी प्राण में शोक देखा नहीं जाता, इसीलिए यह स्पष्टतया सम्भावित है कि प्राण ही आत्मा है।"

प्र०—"उन्हों ने क्या कहा ?"

उ०—"नाम-रूपात्मक 'प्राण' माया से उत्पन्न होने के कारण मिथ्या है, इसलिये वह आत्मा हो नहीं सकता, किन्तु वह आत्मा का उपलक्षक-मात्र है। मुख का प्रतिबिम्ब जैसे मिथ्या होता हुआ भी अपने मुख को उपलक्षित करता है, वैसे ही मिथ्या प्राण भी सत्य आत्मा का उपलक्षक हो सकता है। 'इदम्' बुद्धि का विषय होने के कारण आत्मा से पृथक 'आशा' आत्मा का उपलक्षक नहीं हो सकती, किन्तु लिङ्गशरीर 'अहम्' बुद्धि का विषय है, इसलिये (अर्थात् जीव द्वारा निजरूप में गृहीत होने के कारण) उसमें स्थित प्राण के द्वारा प्रत्यगात्मा उपलक्षित होता है। प्राण को आत्मरूप में जानने से गौण अतिवादिता सिद्ध होती है और सत्य वस्तु को आत्मरूप में जान लेने पर मुख्यरूप में अतिवादी हुआ जाता है।"

प्र०—"इसके उपरान्त नारद ने क्या किया ?"

उ०—"श्रीगुरू का अतिशय कारुण्य देखकर हर्षपूर्वक नारद ने कहा—"मिथ्या वस्तु में आत्मबुद्धि के परित्यागपूर्वक सत्य वस्तु को प्रत्यग्रूप में जानकर मैं मुख्य अतिवादी होना चाहता हूँ।" सनत्कुमार ने कहा—"हे नारद ! तुम सत्य वस्तुको जो जानना

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चाहते हो, वह गुरु से उपदिष्ट होने से ही ज्ञात नहीं हो जाता किन्तु विज्ञान और मननादि के द्वारा विचार करने के पश्चात् ध्यान करने पर उसका अच्छी तरह बोध होता है।"

प्र०—"कृपा करके विज्ञानादि का स्वरूप और उनकी हेतु-परम्परा बतलाइये ?"

उ०—"संशय तथा विपर्यय का अच्छी तरह निराकरण करके सत्य वस्तु को जानने से 'सत्यवादी' हुआ जाता है। सत्यवादिता का कारण विज्ञान है, विज्ञान का हेतु अन्वय-व्यतिरेकपूर्वक मनन, मनन का हेतु गुरु तथा शास्त्रवाक्य में श्रद्धा, श्रद्धा का हेतु निरन्तर श्रवण में निष्ठा, निष्ठा का कारण इन्द्रिय संयम तथा चित्त की एकाग्रता का सम्पादन (कृति) और मोक्ष सुख का ज्ञान उक्त कृति का प्रयोजन हैं। इस सुख का ज्ञान विना हुए यम, नियम तथा विज्ञान आदि के द्वारा चित्त की एकाग्रता सिद्ध नहीं हो सकती।"

प्र०—"अच्छा, 'सुख' किसे कहते हैं ?"

उ०—"तुम्हें (सर्वव्यापी पुरुष को)। मर्यादित वस्तु में सुख रह नहीं सकता। जो अल्पधनवाला है, उसे अन्य धनी पुरुष के धनाधिक्य को देखकर क्लेश होता है !"

प्र०—"भूमा, तथा 'अल्प' वस्तु का निर्वचन क्या है ?"

उ०—"ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान, इस त्रिपुटी भाव का जहाँ अभाव होता है, वही दिगादिअवच्छेद से रहित होने के कारण 'भूमा' इस नाम से कहा जाता है और त्रिपुटीरूप मायिक, दृश्य-मान जगत अनेक भेदविशिष्ट होने के कारण 'अल्प' इस नाम

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

GC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

से कहा जाता है।"

प्र०—"इस में कोई शास्त्रीय प्रमाण है क्या ?"

उ०—"भूमा, अमृत या अमरणशील वस्तु का नाम है। विनाशशील पदार्थ को 'अल्प' कहा जाता है। 'गीता' में परमात्मा को अच्छेद्य, अदाह्य, अक्लेद्य एवं अशोष्य कहा गया है। यह अमर्त्य ब्रह्म ही 'भूमा' इस नाम से यहाँ निर्दिष्ट हुआ है। ब्रह्म से अतिरिक्त नश्वर पदार्थ ही 'अल्प' है। यह 'अल्पता' या परिच्छेद व्यावहारिक अथवा सांसारिक दशा में ही दिखलायी पड़ता या अनुभूत होता है। मुक्ति अवस्था में यह रह नहीं सकता, क्योंकि प्रबोधकाल में मर्त्य जगत् ज्ञान द्वारा निवृत्त या बाधित हो जाता है। अमृतत्त्व होने के कारण 'भूमा' संसार (अज्ञान) तथा मोक्ष इन दोनों अवस्थाओं में विद्यमान रहता है। यह अखण्डित, एकरस, सर्वदा प्रकाशशील, आनन्दस्वरूप 'भूमा ही परमात्म-तत्व है।"

नारद ने प्रश्न किया—"भगवन् ? यदि उस अद्वय भूमातत्व में रोग, मृत्यु तथा दुःख नहीं है, तो वे दिखलाई कैसे देते है ? शास्त्रों में भी तो मरण, स्वर्ग, नरक की चर्चा सुनी जाती है ?"

सनत्कुमार ने कहा—'देहादि में अभिमानपूर्वक संसार में वास्तव बुद्धिरूप मिथ्या ज्ञान का कारण जो आत्मतत्व का अनवधारण या परमात्मविषयक अज्ञान है, वही जीव का स्वतः ब्रह्मभाव से प्रच्युति कराकर जन्म मरणादि समस्त अनर्थों का कारण होता है। स्वरूप में अवस्थानरूप ब्रह्मनिष्ठा या मोक्षपद अप्रमाद स्वरूप होने से मृत्युरहित या अमृत कहा गया है। यह

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्वयंज्योति एवं क्रियाफल से अत्यन्त भिन्न होने के कारण कर्मद्वारा या ज्ञानकर्म के समुच्चय द्वारा कदापि सिद्ध नहीं हो सकता।"

प्र०—"मृत्यु क्या तव है ही नहीं ?"

उ०—"जैसे देव या प्रारब्ध का—दृश्यमान शरीर या जन्मान्तरीय शुभाशुभ कर्मों से पृथक् कोई रूप उपलब्ध नहीं होता, वैसे ही साक्षात् विनाश के हेतु अज्ञान या आत्मा के प्रमाद से अतिरिक्त व्याघ्र की तरह स्पष्ट प्रतीयमान मृत्यु का कोई रूप नहीं है। श्रुति स्मृति में अज्ञान को ही मृत्यु बतलाया गया है।"

प्र०—"मोक्ष का साधन क्या है ?"

उ०—"अप्रमाद या अमृतत्व कर्म द्वारा साध्य नहीं है और कर्म द्वारा प्राप्य भी नहीं है क्योंकि वह नित्यसिद्ध और नित्यप्राप्त है। अज्ञान या आवरण का अपसारण होने पर आत्मा सम्यक् रूप में प्रकाशित होता है, इसलिये शास्त्र में कहा गया है कि ज्ञान से ही मोक्ष होता है।"

प्र०—"ज्ञान कैसे प्राप्त होता है ?"

उ०—"सर्व कर्म परित्याग अथवा आत्मनिष्ठ और आत्मपरायण हुये विना आत्मा का प्रतिबन्धरहित या प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त नहीं होता।"

प्र०—"तव शास्त्र में कर्म करने का विधान कैसे किया गया है ?"

उ०—"अज्ञजनों के लिए—चित्तशुद्धि के लिये—एकमात्र साधनरूप में शास्त्रोक्त कर्मों का उपदेश किया गया है।"

प्र०—"फिर कर्म से बन्धन होता है"—"कर्मणा बध्यते जन्तुः"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इस भगवद्वचन की सङ्गति कैसे होगी ?"

उ०—"ईश्वर की प्राप्ति के लिए फलाकांक्षा से रहित होकर जो अपने अपने वर्ण तथा आश्रम के अनुसार शास्त्रविहित कर्म (स्वधर्म-पालन या तपस्या) अनुष्ठित होता है, उस से बन्धन नहीं होता। कर्मद्वारा कषाय परिपक्व (मलिन संस्कार या असत् वासना का क्षय) हो जाने पर चित्त आत्माकार से आकारित हो जाता है।"

प्र०—"जब ज्ञान ही मोक्ष का साधन है, तब सत्वशुद्धि को मोक्षसिद्धि का द्वार क्यों कहा गया है ?"

उ०—"ज्ञान द्वारा ही मोक्ष सिद्ध होता है, परन्तु चित्त की निर्मलता के विना वह ज्ञान उत्पन्न नहीं हो सकता। अशुभ कर्म या वासना का क्षय होने पर ज्ञान उत्पन्न होता है, स्वच्छता के अभाव में चित्त आत्मज्ञान के योग्य नहीं होता। जिसका अन्तःकरण विशुद्ध हो गया है, उसी को नित्य-अनित्य पदार्थ के विवेक आदि द्वारा ज्ञानप्राप्ति एवं मोक्षसिद्धि होती है। अतः बुद्धि का शोधन करने के लिए सर्वेश्वर परमात्मा के उद्देश्य से वाचिक, मानसिक और कायिक श्रौर तथा स्मार्त सकल प्रकार के कर्मों का तब तक अच्छी तरह आचरण करना पड़ता है, जब तक चित्त निर्मल होकर अधिकारी को ऐहिक एवं पारलौकिक फलभोग में वैराग्य उत्पन्न नहीं होता और बुद्धि अन्तर्मुख परिणाम को प्राप्त या योगारूढ़ (आत्माकार में आकारित) नहीं होती। शुद्धचित्त, वैराग्यवान् और आत्माकार वृत्तिसम्पन्न मुमुक्षु की कर्म से निवृत्ति या उपरति देखी जाती है।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्र०—"इसके उपरान्त मुमुक्षु का क्या कर्तव्य है ?"

उ०—"शम, दम आदि गुणों से युक्त होकर श्रवण, मनन से उसे सम्पन्न होना चाहिये और निर्जन प्रदेश में स्थिर होकर निरन्तर आत्मध्यान में रत रहना चाहिये।"

प्र०—"इस योग का अनुष्ठान किस तरह करना चाहिए ?"

उ०—' मनोनुकूल पवित्र स्थान में सुखासन पर बैठकर शरीर, शिर और ग्रीवा सीधी रखकर योगी पुरुष विश्व, तैजस एवं प्राज्ञ को (जाग्रत् से स्वप्न, स्वप्न से सुषुप्ति, इस क्रम से)—कार्य-कारण भाव से अत्यन्त पृथक् परमात्मा में—विलीन करके पूर्णात्मस्वरूप में अवस्थित होता है।"

प्र०—"वह परमात्मा कैसा है ?"

उ०—"सर्व शरीरों में स्थित 'अहंप्रत्यय (ज्ञान) से सदा लक्षित, स्वयंवेद्य, पूर्णानन्द, मायामल-रहित, अद्वितीय, इन्द्रिय एवं मन के अगोचर, क्षुधा-तृषा आदि धर्म से अस्पृष्ट, आविर्भाव-तिरोभाव से रहित, त्रिपुटीशून्य, शुद्ध प्रकाशरूप में सर्वदा अवस्थित, प्रणवप्रतिपाद्य भगवान परमात्मा का योगयुक्त मुमुक्षु को अनन्यरूप में चिन्तन करना चाहिए।"

प्र०—इस योगाभ्यासरूप प्रयत्न का फल क्या है ?"

उ०—"अपने आपको निरन्तर परमात्मस्वरूप में ध्यान करने के फलस्वरूप जिस समय योगी ब्रह्म को साक्षात् अभिन्नभाव से जानता है, उस समय अज्ञान तथा तत्कार्य से विनिर्मुक्त होकर सर्वभयरहित, वीतशोक एवं कृतकृत्य हो जाता है। आत्मा को जानने पर बुद्धिमान हो जाता है और परमात्मज्ञान होने से नित्य,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

निरतिशय सुख की प्राप्ति होती है, अतएव परमानन्दस्वरूप आत्मा का ही—हृदय में 'अहं' रूप में सदा स्फुर्तिशील (विना वृत्ति के अनुभूयमान) और निर्विकाररूप में अवस्थित परमात्मा ही 'मैं' हूँ—इसतरह सर्वदा ध्यान करना उचित है। आत्मा से भिन्न एवं दुःखप्रद किसी अनात्म विषय का चिन्तन करना सर्वथा अनुचित है। यही सर्व शास्त्रों का सार सिद्धान्त है।"

प्र०—"ब्रह्मसुख-प्राप्ति का साधन क्या है ?"

उ०—"वक्ष्यमाण गुण-समुदाय अनादि श्वासनाकृत मान-मोह के प्रतिबन्धक हैं, अतः वे ब्रह्मप्राप्ति के द्वार कहे गये हैं। इन्हीं गुणों का—प्रयत्न एवं अभ्यास द्वारा सम्पादन करना मुमुक्षु का कर्तव्य है। वे गुण ये हैं—सत्य (यथार्थ भाषण और सर्व प्राणियों पर दया), आर्जव (अवक्रता या अकुंटिल भाव)-ह्री (लोकापवाद से भय या अनुचित कर्म करने में लज्जा), दम (इन्द्रिय तथा मनका निग्रह अथवा विषय ग्रहण की भी चिन्ता का अभाव), शौच (अविद्या तथा पाप कर्म का निवारण) और विद्या (वेद-शास्त्र का रहस्यज्ञान या ब्रह्मविद्या)।"

प्र०—"स्वधर्म-पालन में किन-किन दोषों का परिहार करना चाहिए ?"

उ०—"अनुराग आदि मनोमल से रहित स्वधर्मपालनरूप तपस्या ही अधिक अविनाशी फलशाली और मोक्षोपयोगी होती है। क्रोधादि बाह्य दोष तथा नृशंसता आदि सात दोष तपस्या के कल्मष कहे जाते हैं। इनका परित्याग कर किल्विषरहित 'केवल' तपस्या द्वारा सत्वशुद्धि होती है।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्र०—"तपस्या के शास्त्रोक्त गुण कौन है ?"

उ०—"ज्ञान आदि बाह्य।"

प्र०—"कृपा करके तपस्या के दोष तथा गुणों का उल्लेख कीजिये।"

उ०—"क्रोध, काम, लोभ, मोह, विधित्सा, अकृपा, असूया, मान, शोक, इच्छा, ईर्ष्या और जुगुप्सा, इन सब दोषों से रहित होने पर स्वधर्म-पालनरूप तपस्या मोक्ष प्रयोजक होती है। इच्छा का प्रतिघात होने पर उत्पन्न मनस्ताप 'क्रोध' है। स्त्री आदि की अभिलाषा 'काम', परद्रव्य की इच्छा या अपने न्यायोपार्जित धन के सदुपयोग की अक्षमता 'लोभ', कर्तव्याकर्तव्य का अविवेक मोह; विषय पिपासा या आतृप्ति 'विधित्सा' निर्दयता या निष्ठुरता 'अकृपा' पराये गुणों में दोषदर्शन या असहनशीलता 'असूया' अपने में पूज्यत्वबुद्धि 'मान', इष्ट पदार्थ का नाश होने पर मन की विकलता या विक्षोभ 'शोक', विषयभोग में रुचि 'इच्छा' पराये ऐश्वर्य में असहिष्णुता 'ईर्ष्या' और परनिन्दा या विभत्सता 'जुगुप्सा' है। नृशंस का आचरण भी तपस्या का प्रतिबन्धक होता है। नृशंस मनुष्य सात प्रकार के होते हैं—१ स्त्रीसङ्ग आदि में आसक्त, २ २-दूसरों का उपद्रव करके बड़ा होनेवाला, ३-दान देकर पश्चात्ताप करने वाला, ४-अर्थलोभ से सब प्रकार के अपमान सहन करने वाला या प्राण जाने पर भी पैसा न खर्चनेवाला, ५-ज्ञान बल से रहित, ६-पराये दुःख में सुखी होनेवाला, और ७-अपनी स्त्री से द्वेष करने वाला। तपस्या के बारह गुण इस प्रकार हैं—तत्त्वज्ञान, सत्यता, मनोनिग्रह, अध्यात्मशास्त्र का श्रवण, परगुण में सहिष्णुता,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लज्जा, द्वन्द्वसहन या अक्रोध, परगुण में दोप न देखना, यज्ञ, दान, विपय-प्राप्ति में इन्द्रियों का निग्रह और अन्तःकरण की उपरति। इन्हीं द्वादश 'महाव्रतों' को शास्त्रों में ब्राह्मण के परम पुरुपार्थ-साधन कहा गया है।"

प्र०—"उक्त गुणों को कैसे स्वाधीन किया जाय ?"

उ०—"उक्त गुणों में से मुमुक्षु यदि एक या दो को प्राप्त कर सके, तो वह धीरे धीरे ज्ञान प्राप्त कर संसार से मुक्त हो जाता है। विना मन का निग्रह किये यह नहीं होता, इसलिये दम के साधन में १८ दोप वतलाये गये हैं। इन सबके निवृत्त होने पर 'दम' साधित होता है और पूर्वोक्त। वारह—'महाव्रत' सिद्ध होते हैं। वे विघ्न ये हैं—१-अयथार्थ भाषण, २-परदोप-कथन, ३ धनादि विपय में अभिलापा, ४- वैदिक कर्म में अश्रद्धा, उपवास, व्रतादि में क्षुधा, जिह्वालौल्य आदि, ५-अज्ञान, ६-यदृच्छालाभ में सन्तोप का अभाव, सत्क्रिया की अनिच्छा, ७ दूसरों को उद्वेग करना, ८-अनम्रता, ९-कलह, १०-प्राणिपीडन, ११-दोपारोपण; १२-निरर्थक प्रलाप, १३-दुःख का वृथा अनुचिन्तन, १४-द्वन्द्व असहन, १५-इन्द्रियों के विपयों में चपलता, १६-धर्म, वैराग्य तथा ज्ञान की असिद्धि, १७-प्रतिपिद्ध आचरण और १८-अविहित हिंसा। इन्हीं का नाम 'दमदोप' है। इनके विपरीत यथार्थ भाषणादि १८ दमगुण कहे जा सकते हैं। ये १८ गुण और ६ त्याग मिलकर २४ सद्गुण मद (हर्षजनित संमोह) का नाश करते हैं, इसलिये ये 'मददोप' भी कहे जाते हैं।"

प्र०—"छ प्रकार के त्याग कौन हैं ?"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उ०—"पुत्रैषणा एवं धनैषणा का त्याग, श्रौत, स्मार्त कर्मों अथवा देव पितृकार्य के लिये दान (धन त्याग) और विषयैषणा तथा सुखैषणा का त्याग इन में विशुद्ध सात्विक वृत्ति का अवलम्ब न करके विषयों में अनित्यतादि दोष-दर्शन के फलस्वरूप निरिच्छ होकर धनादि का परित्याग और कामना का परित्याग अतिश्रेष्ठ मुमुक्षु द्वारा प्रयत्नपूर्वक सम्पादनीय है।"

प्र०—"इन छः त्यागों से क्या सिद्ध होता है?"

उ०—'इनसे सम्पन्न होने पर अधिकारी प्रमादरहित हो जाता है। अप्रमादी पुरुष आठ गुणों द्वारा विभूषित होता है। आशा का त्याग होने पर ही समस्त दुःखों की निवृत्ति (मोक्ष) सिद्ध होता है।"

प्र०—"आठ गुण कौन से हैं?"

उ०—"यथार्थ भाषण, इष्ट किसी देवतादि में चित्त की एकतानता, प्रणव के अभ्यास द्वारा विश्व, तैजस एवं प्राज्ञरूप परिच्छिन्न भाव का निरसन करके स्वाभाविक ब्रह्मानन्द स्वरूप में अवस्थान, 'मैं कौन हूँ? किसका हूँ? कहाँ से आया हूँ?' इसका विचार, विषयों में वितृष्णा, आत्मा का सम्यक् ज्ञान या द्रव्यादि में अनभिलाषा, ब्रह्मचर्य और पुत्र-दार-गृहादि का अपरिग्रह।"

प्र०—"इससे क्या सिद्ध हुआ?"

उ०—"फलाकांक्षारहित होकर स्वधर्मपालनरूप तपोव्रत का आचरण करने से जन्म, मृत्यु और जरा से निवृत्ति होती है।"

प्र०—"कैसे?"

उ०—"वर्तमान इन्द्रियग्राह्य एवं अतीत-अनागत मनोग्राह्य

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सकल विषयों से जो मुक्त हो गये हैं, वे अत्यन्त सुखी (जीवन्मुक्त) हो जाते हैं। विषय-विमुखता या निःस्पृहता आते ही तत्त्वबोध द्वारा स्वसुखरूप में सम्यक् अवस्थिति हो जाती है।"

नारद ने कहा—"उक्त एकरस भूमानन्द क्या सुषुप्ति आदि समय में भी भासमान होता है ?"

सनत्कुमार ने कहा—"हाँ, विशेषरूप में परिज्ञात न होने पर भी आनन्दात्मा सामान्यरूप में सर्व-साधन-निरपेक्ष होकर निज स्वभाव में सर्वदा ही प्रकाशमान रहता है। अन्यथा सुषुप्तिरूप दृश्य की सत्ता एवं स्फुर्ति न हो सकती। जिसकी कृपा से सुषुप्ति प्रकाशित होती है, वह अप्रकाशित या अज्ञात कैसे रह सकता है ? आत्मा स्वयं स्फुरणस्वरूप होने के कारण उस में (साक्षात् या परम्परा से) अध्यस्त (अविद्या, अहङ्कार, चित्त, इन्द्रिय आदि) अखिल प्रपञ्च का बाद में अवभासप्रतीति होती है।"

प्र०—"तब सुषुप्ति और समाधि में क्या भेद है।

उ०—'सुषुप्ति काल में आत्मा अज्ञान से आवृत होकर प्रकाशमान रहता है और समाधि-अवस्था में निरावरण स्वरूप में भासमान होता है। निद्राकाल में 'कुछ नहीं है' ऐसी अभाववृत्ति अवशिष्ट होती है, समाधि में साक्षी (प्रमाण-व्यापार की अपेक्षा या अन्तःकरण-वृत्ति की सहायता के विना) अपरोक्षरूप में प्रकाशित होता है। साक्षीभूत वृत्ति या अखण्ड अनुभव (अन्तःकरण के आत्माकार में आत्यन्तिक या अन्तिम परिणाम) द्वारा ही समाधि में प्रत्यगभिन्नरूप में नित्यानन्दस्वरूप आत्मा का ज्ञान होता है। पूर्वोक्त राजस, तामस सकल मलों के

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विगलनपूर्वक विशुद्ध की हुई बुद्धि आत्मविषयक अभानापादक आवरण की निवृत्ति (अविषयंस्त प्रत्यक्षज्ञान) के लिये उपयुक्त होती है। इससे अविज्ञात आत्मतत्व स्वयं आनन्दरूप में स्पष्ट ज्ञात हो जाता है। कारण या अन्य साधन के विना जिसका बोध होता है, वह साक्षात् अपरोक्ष वस्तु या मुख्य प्रत्यक्षभूत आत्मवस्तु कही जाती है।"

प्र०—"स्वप्रकाश भूमातत्व का स्पष्ट ज्ञान सब जीवों को क्यों नहीं होता ?"

उ०—"मेघ से आच्छादित होने पर सूर्य जैसे स्पष्ट दिखलाई नहीं पड़ता, वैसे ही अज्ञान से आवृत होने के कारण प्रत्यगात्मा का सुस्पष्ट अनुभव नहीं हो पाता।"

प्र०—"प्रकाशस्वरूप आत्मा में भला अज्ञान रह ही कैसे सकता है ?"

उ०—"स्वप्रकाश आत्मचैतन्य अज्ञान का विरोधी नहीं प्रत्युत जैसे सुषुप्तिकालीन (आत्मा से अभिन्न) आनन्द का प्रकाश साक्षी से ही होता है, वैसे ही अज्ञान का भी ज्ञान साक्षी के प्रसाद से ही होता है। अन्यथा 'कुछ भी नहीं जानता' यह अज्ञान कैसे भासित हो सकता है ? (ज्ञान एवं तूलाज्ञान बुद्धिवृत्तिसापेक्ष होने के कारण मूलाज्ञान के अन्तर्भूत हो जाते हैं। यह अज्ञान आत्मा में ही रहकर आत्मा को आवृत करता है, अतएव आत्मा अज्ञान का साधक है। साक्षात्कार वृत्ति में आरूढ आत्मा अशेष अज्ञान का बाधक होता है)।

प्र०—"जब अज्ञान का अङ्गीकार किया, तब तो सत्य पदार्थ होगा ?"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उ०—"यह ठीक नहीं है। श्रुति एवं युक्ति के द्वारा अज्ञान असिद्ध है। सुषुप्ति काल में साक्षी से पृथक् रूप में अज्ञान का ज्ञान नहीं होता, इसीलिये केवल स्वरूपाध्यास (वासना या अभेद कल्पना) से अज्ञान सिद्ध होता है। इस भ्रमसिद्ध अनुभव का ही अनुवाद मोक्षशास्त्र में अज्ञाननिराकरण के लिए देखा जाता है। अप्रतिबद्ध साक्षात्कार का उदय होने पर अज्ञान का त्रैकालिक बाध होकर प्रमाता आदि (स्थूल-सूक्ष्म) पराग्भूत त्रिपुटी के अभाव का साक्षी शुद्ध, बुद्ध, परिपूर्ण, भूमानन्द निज विलक्षण प्रत्यगात्म-रूप में अवशिष्ट रहता है।"

प्र०—निद्राकाल में आनन्द तथा अज्ञान का ज्ञान होना कैसे संभव है ?"

उ०—"मैं सुख से सोया था, अन्य कुछ भी नहीं जाना' सुषुप्ति से जाग्रत पुरुष ऐसा स्मरण करता है। पूर्व अनुभव के विना स्मृति सम्भव नहीं हैं, अतएव इससे सिद्ध होता है कि सुषुप्ति काल में आनन्द एवं अज्ञान का अनुभव (पृथक् साधन के विना) अवश्य ही होता है। बोधरूप आत्मा में कल्पित कार्यकारणात्मक समस्त प्रपञ्च साक्षात् आत्माज्योति की सहायता से अवभासित होता है।

प्र०—"तव अज्ञान कैसे नष्ट हो सकता हैं ?"

उ०—"जैसे अरणी में रहने वाला (सामान्य) अग्नि काष्ठ को दहन न करता हुआ भी घर्षण से उत्पन्न (विशेष) अग्नि मन्थन-काष्ठ को विलकूल जला डालता है, वैसे ही 'तत्त्वमसि' आदि वेदान्तवाक्य से जनित बुद्धि की अखण्डाकार से अकारित वृत्ति में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रतिबिम्बित होने पर स्वप्रकाश आत्मचैतन्य ही समस्त अज्ञान को नष्ट कर डालता है। इससे सब मायिक प्रपञ्च एक रस ब्रह्मात्मरूप में ही भासित होता है।"

प्र०—"यह कैसे हो सकता है?"

उ०—"जैसे अर्जुन के ब्रह्मास्त्र से दग्ध अश्वत्थामा का रथ श्रीकृष्ण की माया से सत्य रथ की तरह प्रतीत होता था, वैसे ही स्वरूपज्ञान से विनष्ट हुआ भी जगत् माया के सामर्थ्य से ज्ञानी को तुच्छ रूप में दिखलायी पड़ता है। ऐसी ही प्रतीति वेदान्त शास्त्र में 'बाधितानुवृत्ति', 'अविद्यालेश', 'जीवन्मुक्ति' आदि नामों से कही गयी है।

प्र०—"इसे और स्पष्ट करके बतलाइये?"

उ०—"सृष्टि पहले आतिवाहिक या ईश्वर के सङ्कल्प से होती है, फिर सङ्कल्प की दृढ़ता (अपने मनोराज्य के सहित हिरण्यगर्भ की तद्रूपता) होने पर आधिभौतिक विराट्भाव (प्रत्यक्ष जगत्-भ्रम) उत्पन्न होता है। व्यष्टि कोटि में स्वरूपाध्यास होने पर स्पष्ट तादात्म्याध्यास और संसर्गाध्यास होता है। अविद्या साक्षात् चैतन्यात्मा में आरोपित होकर भासमान होती है, इसके उपरान्त अविद्या का कार्य प्रमाण-व्यापार की सहायता से प्रकाशित होता है। तत्त्वज्ञान का उदय होने पर कार्य-कारणात्मक अविद्या का अभाव होकर सर्वप्रपञ्च-विलक्षण परमात्मचैतन्य ही अपने ज्योतिर्मय स्वरूप में विराजमान होता है। वासना का नितान्त क्षय होने पर जीव-सृष्टि का नाश होता है और ईश्वर का मायामय प्रपञ्च बाधितरूप में वर्तमान रहकर प्रारब्ध की समाप्ति होने तक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जीवन्मुक्त पुरुष को सुख-दुःख का भागी करता है। किन्तु जले हुए वस्त्र की तरह निःसार मायिक सृष्टि में प्राज्ञ पुरुष की सत्यत्वबुद्धि या आधिभौतिक भ्रम निवृत्त हो जाता है। विदेहकाल में 'ईश्वर-सृष्टि', 'विश्वमाया' या 'लेशाविद्या' भी प्रत्यावृत्त हो जाती है।"

प्र०—"योगवाशिष्ठ, आदि मोक्षोपाय शास्त्र का भी क्या यही सिद्धान्त है ?"

उ०—"हाँ, जीवन्मुक्ति-अवस्था में (चौथी, पाँचवीं और छठीं ज्ञान-भूमिका में) 'ध्येय-वासना त्याग' या 'सरूप मनोनाश' होता है। विदेहमुक्ति अवस्था में (सातवीं भूमिका में) 'अरूप मनोनाश', 'ज्ञेय-वासना त्याग' या 'चित्त का निर्वाण' हो जाता है (ध्येयविषय-पदार्थ, ज्ञेयवासना = ब्रह्मज्ञान या मैत्री, अमानिता आदि गुणों के संस्कार। निर्वाण=आभास ब्रह्माकर वृत्ति का भी अभाव। सरूप = अभासरूप में विद्यमान मन से सहित मुक्त। अरूप = आभास मनके भी अभावपूर्वक अर्थात् आत्यन्तिक) सत्तात्रैविध्य एवं अवस्थात्रैविध्य भी भिन्न परिभाषा में उपदिष्ट हुआ है। भूताकाश, चित्ताकाश और चिदाकाश, यह तीन प्रकार की सत्ता है। आधिभौतिक या पञ्चीकृत वर्ग 'भूताकाश' है। सङ्कल्प, मनोराज्य या सूक्ष्म (आतिवाहिक) प्रपञ्च 'चित्ता-काश' है और वास्तव ब्रह्मसत्ता 'चिदाकाश' है। जीव की पाञ्च-भौतिक, आतिवाहिक और शुद्ध चिदानन्दात्मक-यह तीन अवस्थायें या स्वरूप कहे गये हैं। जीवन्मुक्त वास्तव ब्रह्मरूप में स्थित होते हैं। उत्तम मुमुक्षु=अभानापादक आवरण की निवृत्ति (प्रतिबद्ध साक्षात्कार) के लिए प्रयत्नशील होते हैं। मध्यम मुमुक्षु शास्त्र एवं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

युक्ति द्वारा जगत् के मिथ्यात्व सम्बन्धी निश्चय का अभ्यास करते हैं। अन्त में ज्ञान के भी दो भेद बतलाए गये हैं—चित्तबोध और ब्रह्मबोध। जगत् में सत्यत्वबुद्धि 'चित्तबोध' और शुद्ध परमात्म-स्वरूप में अवस्थान 'ब्रह्मबोध' है। साभास वृत्ति या त्रिपुटीपूर्वक पदार्थ का ज्ञान 'चित्तबोध' है और बोधस्वरूप ब्रह्म में स्थित होना 'ब्रह्मबोध' है। आत्मस्वरूप ब्रह्म के ज्ञात होने पर मुमुक्षु उस से एकीभाव को प्राप्त हो जाता है।"

प्र०—"आत्मचैतन्य अज्ञान का नाश करता है, यह कैसे जाना जाता है?"

उ०—"समाधि में चित्त एक मात्र भूमानन्द स्वरूप आत्मा के आकार से अत्यन्त आकारित रहता है (निरुद्ध भूमिका में चित्त साक्षी से अभिन्नरूप में वर्तमान रहता है) और अभाव आदि अविद्या की कोई सूक्ष्म वृत्ति भी दृश्यरूप में अवशिष्ट नहीं रहती, इसी से चैतन्य का अज्ञान-बाधकत्व स्पष्ट तथा सिद्ध होता है।"

प्र०—"चित्त की वृत्ति के बिना तो किसी भी प्रकार का अनुभव सम्भव नहीं हैं?"

उ०—"अखण्ड बोध आत्मा का स्वरूप होने के कारण चैतन्य-रूप अनुभव (निर्विकल्प ज्ञान) नित्यसिद्ध वस्तु है। चेत्याकार चेतन (अनात्मविषय वृत्तिज्ञान) चितिस्वरूप का आभास मात्र है। चिन्मात्र का प्रतिबिम्ब या दृश्य को सत्ता (सविकल्प ज्ञान) दृशिस्वरूप प्रत्यगात्मा से भिन्न नहीं है। इसलिय अभाव या शून्यता भी आत्म-चैतन्य से प्रकाशित, ज्ञायमान होती है, अन्यथा नास्तिता का ज्ञान कैसे सिद्ध हो सकता है? निद्राकालीन अज्ञान ('मैं कुछ नहीं)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जानता' यह) जैसे स्वप्रकाश चैतन्य की सहायता से भासित होता है, वैसे ही समाधि अवस्था की सुखस्थिति (योगानन्द) भी प्रत्यक्चैतन्य द्वारा ही प्रकाशित होता है। दृश्य का भाव अन्तःकरण की वृत्ति से ज्ञात होता है (सवृत्तिक ज्ञान), दृश्य का अभाव साक्षी द्वारा (अविद्यावृत्ति को सहायता से) भास्य होता है और अभाव का अभाव (अभाव प्रत्यक्ष) स्वयं वेद्य (निर्वृत्तिक अनुभव द्वारा गम्य) होता है, आत्मप्रकाश के अतिरिक्त अन्य चिदाभास या फलव्याप्ति की आवश्यकता नहीं रहती। समाधि में भूमानन्द का अनुभव करके व्युत्थित अवस्था में आत्मवेत्ता प्रज्ञा का अनुस्मरण करता है— (मैं अब तक सुखपूर्वक अपने चैतन्य स्वरूप में अवस्थित था)। अशेष आत्माकार (प्रत्यक्ष, विपर्यय, अभाव आदि) चित्त वृत्ति के निरोधपूर्वक चितिस्वरूप में विश्रान्त निर्वृत्तिक चित्त पूर्वोक्त अखिल राजस तामस दोषों (विषय-वासना) का परित्याग करके साक्षात् चिन्मात्र भाव को प्राप्त हो जाता है (यही प्रशान्त 'चित्त' की साक्षात्काररूप अन्तिम 'वृत्ति' या 'त्' कार-त्यागपूर्वक 'चित्' स्वरूप में 'वर्तन' अथवा अखण्ड रूप में स्थिति है)। विद्यावृत्ति में निर्विकार एवं ब्रह्मभाव में परिणत चित्त में आरूढ़ होकर साक्षी चैतन्य समस्त मूलाज्ञान को विध्वस्त कर देता है। ऐसी निरोध दशा में समस्त दृश्यवर्जित, स्वप्रकाश, एकरस, सुखरूप प्रत्यक्चैतन्य ही दीप्यमान रहता है। समाधि से उत्थित होने पर निरतिशय, निर्विभाग, निराभास भूमानन्द का त्रिपूटीपूर्वक स्मरण और कथन (विद्यानन्द) सम्भव होता है। व्युत्थान दशा में प्रत्यग्ब्रह्म के ऐक्यनिश्चय सम्बन्धी संस्कार अवशिष्ट होतेहैं, इसलिये तद्विषयक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्मृति (ज्ञेय या ब्रह्मात्मैक्य-वासना), मैत्री, करुणा, अमानिता आदि अयत्नसिद्ध शुभ गुण एवं शिष्योपदेशरूप जीवन्मुक्त के नियतिनिर्दिष्ट व्यवहार सिद्ध होते हैं।"

प्र०—"प्रकाश्य और प्रकाशक पदार्थ तो भिन्न भिन्न हैं न ?"

उ०—"नहीं, रज्जु में दृष्ट सर्प की जैसे रज्जु से पृथक सत्ता नहीं हो सकती, वैसे ही अज्ञान, अविद्यानाश, समाधिसुख (योगानन्द या स्वात्मविश्रान्ति) आदि सकल दृश्यभाव अपरिच्छिन्न, अनाधेय, अखण्ड, असङ्ग, स्वप्रकाश आत्मचैतन्य से भिन्न नहीं है। समस्त चेत्य का प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा बाध होने पर बाधकत्वोपलक्षित चेत्यभिन्न चिदात्मा स्वयं सर्वान्तर एवं स्वयं ज्योतिरूप में परिशिष्ट रहता है (इस में अज्ञानादि दृश्य पदार्थ फिर पृथक् रूप में नहीं दिखलायो पड़ सकते)। प्रकाशक के विना प्रकाश्य की सिद्धि नहीं हो सकती, अतएव प्रकाशक ही एकमात्र सत्य पदार्थ है। उपदेश के लिये द्रष्टा-दृश्यरूप आपात द्वैतभाव का अङ्गीकार (कल्पना) करने पर भी दृश्यमुक्त दृक्स्वरूप या शुद्ध द्रष्टा ही अद्वय भूमातत्वरूप में शास्त्र, युक्ति एवं अनुभूति से सिद्ध होता है।"

प्र०—"इस अखण्ड आनन्द का अनुभव अज्ञ जन को क्यों नहीं होता ?"

उ०—"अज्ञानी के लिये यह स्वात्मसुख जाग्रत एवं स्वप्न में त्रिपुटी से निरोहित रहता है (निद्राकाल में आनन्दमय कोश में स्थित आनन्द का अनुभव अविद्या की सूक्ष्म सात्विक वृत्ति से जीव को होता है)। विवेकी मनुष्य ज्ञान द्वारा त्रिपुटी का अभिभव करके साक्षात् निजानन्द (ब्रह्मानन्द) को प्राप्त करते हैं।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्र०—त्रिपुटी किसको कहते हैं ?"

उ०—"ज्ञाता (चित्प्रतिबिम्ब अहम्भाव), ज्ञान (चक्षु आदि इन्द्रियों के संयोग से उत्पन्न बुद्धिवृत्ति) और ज्ञेय (रूप, रसादि) इन्हीं तीनों की समष्टि समुदाय –(क्रमशः सात्त्विक, राजस और तामस भेद से साभास अन्तःकरण का परिणाम) त्रिपुटी कहा जाता है। यह अन्तःकरण से आत्मा का कल्पित (आध्यासिक सम्बन्ध होने पर उत्पन्न होती है।'

प्र०—"विद्वान इस त्रिपुटी का अभिभव कैसे करते हैं ?"

उ०—"त्रिपुटी अज्ञान का कार्य है और मिथ्या है, ऐसा विशेष रूप से जानकर त्रिपुटी के अभाव का साक्षात्कार करके तत्ववेत्ता उसका अनादर करके भूमानन्द (ब्रह्मानन्द में प्रीति करते हैं।"

प्र०—"अखन्ड एकरस भूमानन्द का आधार क्या है ?"

उ०—व्यावहारिक दृष्टि से सर्वव्यापी पुरुष स्वशक्ति माया के विविध प्रपञ्च में अवस्थित है। माया के कार्यरूप अखिल जगत में जो परिमित आनन्द (विषयानन्द) देखा जाता है, वह तो भूमा-स्वरूप ही है, इसलिये कल्पित, विभक्त सुखराशि से अखण्ड स्वात्मानन्द (अद्वैतानन्द) का परिच्छेद नहीं हो सकता। तात्विक दृष्टि में भूमा अपने से किसी भिन्न आधार में स्थित नहीं है (आधेय वस्तु नहीं है)। सर्वात्मा होने से भूमा, द्रष्टृत्व, दर्शनत्व या दृश्यत्व-रूप किसी असाधारण धर्म का आश्रय नहीं होसकता। जो सभी कुछ स्वयं है, वह किसके आश्रय में स्थित होगा ?"

प्र०—"जब तत्वतः भूमा अपने से अन्य किसी के भी आधार पर स्थित नहीं है, तब ऐसे भूमा तत्व का बाध कैसे हो सकेगा ?"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इसके उत्तर में सनत्कुमार ने कहा—',आकाश जैसे निराधार होकर स्थित है, वैसे ही भूमा भी अपने में स्थित क्यों नहीं हो सकता ? इस युक्ति से स्वयंसिद्ध वस्तु अवगत हो जाती है।

प्र०—यौक्तिक व्युत्पत्ति से तो प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं हो सकता ?"

"उ०—विषय-सुख भूमास्वरूप का आभासमात्र है, ऐसी अनुमिति से ब्रह्मानन्द को परोक्षरूप में जानकर (श्रवण, मनन और) निदिध्यासन की सहायता से उसका प्रत्यक्ष अनुभव होता है।"

प्र०—"इस बोधक्रम को स्पष्ट रूप से बतलाइये ?"

उ०—पहले चारों और, नीचे और ऊपर, सर्वत्र ब्रह्म का सर्वात्मकरूप से दर्शन करना चाहिये। जगत के अखिल पदार्थों में जो सत्ता, प्रकाश एवं प्रेम देखा जाता है, वही भूमा वस्तु है। भूमा से वियुक्त होकर किसी वस्तु की सत्यता नहीं रह सकती (पारमार्थिक सत्यवस्तुरूप कारण से पृथक्कृत होने पर कार्यवर्ग सत्ताशून्य हो जाता है)। असत्य पदार्थ फिर से ज्ञान का विषय या प्रेम का आस्पद कैसे हो सकता है ? अतएव भूमा समस्त कार्य प्रपञ्च का आत्मा (सारतत्व या वास्तविक स्वरूप) है, ऐसा जानना चाहिए।"

प्र०—"सर्व पराक् प्रपञ्च का स्वरूप होने पर भी भूमा स्वयं प्रत्यक् स्वरूप (अहं शब्द के लक्ष्यार्थ) से तो भिन्न ही होगा ?"

उ०—"नहीं, भूमातत्व को पहले बाह्य तत्व के आत्मारूप में जानकर फिर उसे अहंवस्तुरूप में जाना जाता है। घट, मठ आदि में जैसे सत्, चित् और आनन्द दिखलायी पड़ते हैं, वैसे ही अपने देह, इन्द्रिय, प्राण, मन और अहङ्कार में भी सत्ता, ज्ञान और प्रेम

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दिखलायी पड़ते हैं। इस से यही निश्चित होता है कि देहेन्द्रियादि में 'मैं इस रूप में अवस्थित प्रत्यगात्मा ही समस्त प्रपञ्च का सारभूत भूमा है, अन्य नहीं। अतः 'देहादि समस्त जगत् का अन्तरात्मा स्वयं मैं हूँ, मुझ से अतिरिक्त ये कुछ भी नहीं हैं', ऐसा अनुसन्धान करना चाहिए।"

प्र०—"देहादि से उपहित 'मैं, सब का आत्मा कैसे हो सकता है?"

उ०—"सार्वभौम राजा प्रसाद पर स्वल्प प्रदेश में स्थित रह कर (स्थूल शरीर द्वारा) उस समय सर्वभूमि का नियन्ता न होता हुआ भी जैसे 'मैं सर्व भूमिका ईश्वर—स्वामी—हूँ, ऐसा मानता है, वैसे ही देहादि उपाधि में स्थित रहकर 'मैं सर्वात्मक भूमा (बाह्य एवं आभ्यन्तर समस्त प्रपञ्च का स्वयं अन्तर्यामी और साक्षी) हूँ' ऐसा अभिमान—विद्वान पुरुष—क्यों नहीं कर सकता?"

प्र०—"मैं भूमा हूँ' ऐसा अहङ्कार तो मिथ्या होगा?"

उ०—"सर्वत्र स्थित भूमा चैतन्यस्वरूप होने के कारण उसे आत्मरूप में जानना भ्रम नहीं है।"

प्र०—"'अहं' शब्द का अर्थ तो साभास अन्तः करण है, वह असत्य पदार्थ मिथ्या होने के कारण सर्वरूप कैसे हो सकता है और कैसे वह मुक्ति-अवस्था में परिनिष्ठित हो सकता है?"

उ०—"भूमा सर्वात्मक है और मैं स्वयं सर्वव्यापी हूँ, यह जानने के उपरान्त स्वरूपसाक्षात्कार द्वारा प्रमातृभाव के लीन होने पर निरहङ्कार चिदात्मा ही अवशिष्ट रह जायगा (मुक्ति में मुमुक्षु के स्वरूप का नाश नहीं होता)। यही नित्यानन्द स्वरूप

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चेतन्यात्मा 'अहं' पद का वास्तविक अर्थ है ('अहं' शब्द का अर्थ सर्वथा मिथ्या नहीं है)। 'मैं चैतन्य स्वरूप हूँ, ऐसा निदिध्यासन आत्मसाक्षात्कार का साधन है (भेदभाव, परोक्षज्ञान या परिच्छिन्न अहङ्कार मिथ्या हो सकता है)।"

प्र०—"सत्य वस्तुमात्र जानकर मैं अतिवादी होना चाहता हूँ" ऐसी इच्छा करनेवाले नारद से अन्त में सनत्कुमार ने क्या कहा ?"

उ०—' उक्त त्रिविध शास्त्रोक्त क्रमानुसार वस्तुतत्व के विचार-रूप 'श्रवण' करने के उपरान्त भूमा को जानकर युक्ति की सहायता से 'मनन' करो और मनन के अनन्तर 'ध्यान' के द्वारा भूमातत्व का 'साक्षात्कार' करके जीवन्मुक्त हो जाओ, इस तरह सनत्कुमार ने उपदेश किया।"

प्र०—"निदिध्यासन का अभ्यास कैसे किया जाता है ?"

उ०—"निष्काम कर्मोपासनारूप स्वधर्मपालन या तपस्या द्वारा ईश्वर के सन्तुष्ट होने पर अन्तःशुद्धि होती है। इसके फलस्वरूप विषय-विरति या अनात्म पदार्थ के चिन्तन का अभाव (चित्त की उपरति) उत्पन्न होने पर स्थिर बुद्धि-वृत्ति की सहायता से काम, क्रोध, अहङ्कार आदि से आत्मतत्व का विवेचन सम्भव होता है। अहंकार आदि से सम्यक् विविक्त आत्मरूप साक्षी में समस्त सूक्ष्म दृश्यवर्ग का विलय करके स्थित होने के उपरान्त साक्षी को भी निर्विकल्प, परिपूर्ण, परमात्मतत्त्व में लय कर देना चाहिये। इसतरह दृश्यानुविद्ध और शब्दानुविद्ध सविकल्प समाधि का अभ्यास करने के उपरान्त लयदोष, कषाय एवं रसास्वाद से उत्पन्न अतिसूक्ष्म, अज्ञात त्रिपुटीभाव का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

निरसन करने के लिए दीर्घकाल तक तैलधारावत् निरन्तर आत्म-ब्रह्माकार वृत्तिप्रवाह या निर्विकल्प समाधि का अभ्यास करना पड़ता है। इसके परिणामस्वरूप निरुद्ध अवस्था के विच्छेद-काल में प्राप्त प्रकाश, अन्धकार या आनन्दातिशय का अनुभव (कादाचित्क एवं अतिसूक्ष्म दृश्य होने के कारण) परित्यक्त होते होते शुद्ध, बुद्ध नित्य, चिदानन्द आत्मस्वरूप का स्पष्टतर ज्ञान—निःसंकल्प एवं अतिनिर्मल चित्त में—आविर्भूत होता है। निरोध-प्रयत्न के अभिमान की शिथिलतापूर्वक दृश्याकार अहंवासना के छूट जानेपर आवरक अज्ञान विध्वस्त हो जाता है और प्रत्यग्ब्रह्म मुमुक्षु के निजीरूप में प्रकाशित हो जाता है। इसके उपरान्त दृढ़, समाहित या क्षीण चित्त में अहंभाव का लेश भी अवशिष्ट न रह जाने से उत्थान या समाधि में विद्वान का आग्रह या आस्था नहीं होती। आत्मा का यथार्थ साक्षात्कार 'मुख्य समाधि' कहा जाता है—देह, इन्द्रिय, प्राण या मन का आपात निरोध (चित्त का शुद्ध, सात्विक अभिमान) नहीं। इसीलिये निर्विकल्प समाधि में भी दृश्य का अस्तित्व रहने के कारण उससे आत्मा का सम्यक् ज्ञान नहीं होता। वोधपूर्वक मनःपट पर से दृश्य का अत्यन्त मार्जन ही 'मोक्ष' कहा गया है। आत्मा के आवरक अज्ञान के अपसारणार्थं अन्तःकरण का निरोध नितान्त उपकारी साधन होने पर भी साक्षात्कार के अनन्तर नित्य सिद्ध, प्रत्यगानन्द, स्वप्रकाश परमात्मतत्त्व में उसकी कुछ भी सार्थकता नहीं हो सकती। प्रारब्धसम्बन्धी वासना-वैचित्र्य के लिए जीवन्मुक्त का (लोकदृष्ट) व्यवहार या समाधि, दोनों ही सम्भव होता है।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्र०—"जीवन्मुक्त पुरुष का प्रारब्ध-व्यवहार कैसा होता है ?"

उ०—"फलोन्मुख कर्म का वेग (सुख-दुःखप्रद प्रारब्ध वासना) भिन्न-भिन्न होने के कारण मुक्तिदशा में तत्त्ववेत्ताओं के चार प्रकार के व्यवहार देखे जाते हैं—१. तीव्र भोगप्रद कर्म, २. मध्यम कर्मवेग, ३. मन्द संवेग, और ४ सुप्त संवेग। लोक दृष्ट बाह्य त्याग या उपरति के तारतम्यानुसार कर्म या भोग वासना के यह भेद कल्पित होते हैं।"

प्र०—"इन चारों अवस्थाओं का स्पष्ट रूप से विवेचन कीजिये ?"

उ०—"श्रुति ने इन चार प्रकार की स्थितियों के अनुसार क्रमशः ज्ञानी के चार भेद बतलाये हैं—आत्मरति, आत्मक्रीड, आत्ममिथुन और आत्मानन्द। कर्म का वेग तीव्र होने पर (पशु आदि की तरह) प्रायः आत्मानुसन्धान से रहित होकर आत्म-वेत्ता कदाचित् आत्मा में आन्तर प्रीतिसम्पन्न होने पर 'आत्मरति' कहा जाता है। वासना का वेग मध्यम होने पर भोग की प्रधानता देखी जाती है और भोग के आवकाश के समय आत्मविषयक चर्चा या आलोचना में निरत रहकर (बाह्य उपकरण में प्रेम रखने वाले बालक की तरह) आनन्द का अनुभव करने पर तत्वज्ञ 'आत्मक्रीड' कहा जाता है। बाह्य कर्म का वेग मन्द होने पर भोग में अनादर होता है और आत्मचिन्तन में अत्यधिक निष्ठा होकर (स्त्री-पुरुष के परस्पर सुखभोग की तरह) निजानन्द का अनु-होता है, ऐसे ज्ञानी को 'आत्ममिथुन' कहा जाता है। प्रारब्ध कर्मवासना के क्षीणप्राय हो जाने पर उत्कृष्ट उपरति (सुप्त

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कर्मवेग या वाह्य व्यवहार का अभाव) देखी जाती है और निर्विघ्न रूप से निर्विकल्प समाधि में स्थित होकर जीवन्मुक्त स्वयं अद्वय सुखस्वरूप या 'आत्मानन्द' हो जाता है। इसतरह व्युत्थान के या वाह्य व्यवहार के न्यूनाधिक्य के अनुसार ज्ञानवान पुरुष को 'ब्रह्मवित्', 'ब्रह्मविद्वर', 'ब्रह्मविद्वरीयान्' और 'ब्रह्मविद्वरिष्ठ' भी कहा जाता है। 'योगवाशिष्ठ' में भी आत्मवेत्ता की प्रारब्ध-वासना के अनुसार (वहिर्दृष्टि से) कल्पित—चौथी, पाँचवीं, छठी और सातवीं योगभूमिका के उत्तरोत्तर क्रम 'सत्वापत्ति', 'असंसक्ति', 'पदार्थाभाविनी' और 'तुर्यगा' ये भेद विस्तृत रूप में प्रतिपादित किये गये हैं। 'असंसक्ति' भूमिका में प्रारब्ध वासना के फलस्वरूप (प्रयत्न या अप्रयत्नपूर्वक) प्राप्त अणिमा आदि ऐश्वर्यों में तत्वज्ञ की अनासक्ति या असत्यताबुद्धि होती है। इसके आगेवाली छठी योगभूमिकामें वाह्याभ्यन्तर समस्त पदार्थों की अभावना सिद्ध होतो है और अन्तिम सातवीं भूमिका में चित्त का अत्यधिक निर्वाण (साभास ब्रह्माकार वृत्ति के संस्कार या वासना का भी अभाव) सम्पादित होता है। अत्यन्त निर्वासनिक (फलोन्मुख प्रारब्धवासनाशून्य) विद्वान पुरुष को 'सत्वापति' या साक्षात्कार भूमिका में देहपात होने पर विदेह कैवल्य प्राप्त होता है। वासना का विशेष क्षय होने पर शरीर का भी नाश होता है। प्राक्तन फलोन्मुख वासना के कारण कुछ काल तक मुक्त पुरुष की शरीर में स्थिति और तज्जन्य व्यवहार दृष्टिगोचर होने पर भी आत्मज्ञानी शरीर तथा संसार से सर्वदा ही निसङ्ग रहता है। जैसे आकाश मेघ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

से लिप्त नहीं हो सकता, वैसे ही देहादिकृत व्यवहार से महापुरुष का कोई सम्बन्ध या बन्धन नहीं हो सकता।"

प्र०—"ज्ञान का फल क्या है ?"

उ०—"सकल दुःखनाशपूर्वक अत्यन्त निर्भय अवस्था की प्राप्ति ज्ञान का उत्कृष्ट फल है। विनाशशील पदार्थ में सदा भय रहता है। आत्मस्वरूप से अभिन्न होने के कारण ही भयरहित होना मोक्ष (स्वरूप-सुख) कहा गया है। ज्ञाता, ज्ञेय एवं ज्ञान के एकीभूत होते ही यह सर्वोत्तम पद प्राप्त होता है। 'ज्ञाता' का सङ्कल्प विकल्प-शून्य, मूढतारहित (आवरक अज्ञान या वासना से विनिर्मुक्त) शुद्ध आत्मस्वरूप पहले अज्ञात रहता है, गुरु, शास्त्र एवं पुरुष के प्रयत्न से बाद में ज्ञान होता है। इसी को 'ज्ञेय' तत्व कहते हैं। समाधि के परिपाक-समय में इस त्रिपुटी का परस्पर भेद नष्ट हो जाने पर नित्यानन्द चित्स्वरूप ही ज्ञातारूप में अवशिष्ट रहता है अथवा यथार्थ ज्ञेयरूप में प्रकाशित रहता है या अविनाशी ज्ञानरूप में अवस्थित होता है। यही ज्ञान का फल है। वास्तव में ज्ञाता, ज्ञेय, ज्ञान और फल, इनमें कोई भेद नहीं है। व्यवहार की सफलता के लिए इन चारों के भेद की कल्पना की गयी है। आत्मसाक्षात्कार का उदय होने पर मायिक ज्ञाता आदि व्यावहारिक या कल्पित भेद की समाप्ति हो जाती है, किसी आगन्तुक नवीन फल की प्राप्ति नहीं होगी।"

प्र०—"शरीरपात के उपरान्त तत्वज्ञानी की क्या दशा होती है ?"

उ०—"विदेहमुक्ति में विद्वान पुरुष स्वाराज्य में अधिष्ठित होकर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0: In Public Domain. Digitization by eGangotri

सर्वात्मभाव-सम्पन्न होता है और सर्व लोकों में येथेच्छ विहारशील हो जाता है। इसका कारण यही है कि माया द्वारा कल्पित चौदह भुवन विदेहमुक्त पुरुष के सर्वव्यापी स्वरूप में स्थित होते हैं और अपने वास्तविक स्वरूप में किसी प्रकार की बाधा या प्रतिबन्ध नहीं हो सकता (विद्वान पुरुष की स्तुति के लिये ऐसा फल कहा गया है)।"

प्र०—"विदेहमुक्त महात्मा तो अवश्यमेव ईश्वर से भिन्न स्वरूप ही होता होगा ?"

उ०—"अपना सर्वव्यापी यथार्थ स्वरूप न जानने से प्राकृत-जन ईश्वर को अपने से भिन्न स्वामीरूप मानते हैं और धर्म अधर्म के अभिमानपूर्वक पाप-पुण्य में सत्यत्वबुद्धि करते हैं। इसीसे परलोक में पुण्यार्जित स्वर्गादि क्षयशील लोकों को—प्रारब्ध निर्दिष्ट कालपर्यन्त—भोगकर फिर मर्त्यलोक में आते हैं अप्रतिहत गति होकर अज्ञानी सर्व लोकों में कभी विचरण नहीं कर सकता। भूमात्मदर्शी विदेहमुक्त पुरुष ईश्वरस्वरूप होकर सब स्थानों में स्वच्छन्द विहार करता है (मूढ़पुरुष की निन्दा द्वारा आत्मा की सर्वव्यापितारूप विद्वान की स्तुति करना ही इस उक्ति का तात्पर्य है)।"

प्र०—"दोनों प्रकार के मोक्ष का फल संक्षेप में बतलाने की कृपा कीजिये ?"

उ०—"शास्त्र, युक्ति एवं प्रत्यक्ष अनुभव से परमात्मरूप स्वराज्य जिन्हों ने प्राप्त किया है, उनके लिए प्राण, आशा, आकाश, तेज, अप्, बल, विज्ञान, ध्यान, चित्त, सङ्कल्प, मन, वाणी, मन्त्र

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

और कर्मरूप समस्त अर्वाक् प्रपञ्च निजी स्वरूप हो जाता है, अतः प्राणादि के ध्यान या ध्यानफल के प्रयोजन से रहित यथोक्तदर्शी 'जीवन्मुक्त' कृतकृत्य और सुखी हो जाता है। उसे रोग, दुःख, भय या मृत्यु कुछ भी नहीं होता, क्योंकि वह परिपूर्ण सुख स्वभाव में सर्वदा प्रतिष्ठित रहकर अखिल हृदय पदार्थों में एकात्मबुद्धि करता हैं। अपने अंशभूत किसी अवयव से अवयवी पुरुष को जैसे भय या पीड़ा उत्पन्न नहीं होती, वैसे ही सर्वकल्पना के अधिष्ठान भूमा-स्वरूप में अवस्थित आत्मज्ञ को सकल मायिक पदार्थों से शोक या भय का अवसर ही कैसे हो सकता है ? 'विदेहमुक्त' विद्वान ब्रह्मरूप में स्थित होकर (मूढ़ जन की दृष्टि में) अपनी माया से समस्त मायिक प्रपञ्च की सृष्टि करता है (देहपात के बाद विद्वान को सर्वभाव प्राप्ति या जगत्सृष्टि ब्रह्मविद्या की स्तुति के लिए कही गई है)। सृष्टि के पहले विद्वान एकरूप में स्थित रहता है, सृष्टि के समय ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर, यह तीन मूर्ति धारण करता है और संहार के अनन्तर वह स्वतन्त्र, सर्वशक्तिमान् परमात्मदेव पुनः अपने निर्विकल्प एवं निराकार अद्वैतरूप को प्राप्त कर लेता है।"

प्र०—"इस भूमाविद्या की प्राप्ति का मुख्य साधन क्या है ?"

उ०—अन्तःशुद्धि ही इस ब्रह्मविद्या के अवभास का हेतु है। राग-द्वेषादि दोषों से रहित होकर शब्दादि विषयों का सेवन करने से अन्तःकरण निर्मल होता है, विशुद्ध बुद्धि में उन भूमातत्व का अनवच्छिन्न स्मरण होना सम्भव होता है और निरन्तर प्रत्यग्ब्रह्म का अनुसन्धान होने पर अशेष अनर्थों के पाशरूप हृदयाश्रित

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रागादि ग्रन्थि का विनाश होता है।"

इसतरह के उपदेश से ज्ञान, वैराग्यादि द्वारा राग-द्वेषादिरूप कषाय के तिरोभूत होने पर नारद के निर्मल अन्तःकरण में अविद्या-आवरण से विनिर्मुक्त परमार्थं तत्व का स्फुट प्रकाश भगवान् सनत्कुमार की कृपा से हुआ।

: समाप्त :

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वाल्मीकिविद्यापीठपुस्तकालयः

प्रत्यावर्तनतिथिः

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ब्रह्मनिष्ठ श्रीगुरुदेव डा० क्षितीशचन्द्र चक्रवर्तीजी की अद्वैत वेदान्तविषयक कृतियाँ

नेपाली में

(१) अमृतवचन, (२) आत्म प्रकाश, (३) महौषधि,
(५) आत्मविचार, (६) गीता रहस्य, (७
(८) सुखको बाटो, (९) ईश्वर विज्ञान, (१
(११) ज्ञान सर्वस्व, (१२) ज्ञानालोक, (१३)
(१४) हस्तामलक र आत्मनिष्ठा, (१५) वेदान्त रहस्
(१६) अद्वैत सुधा र आत्मप्रदर्शन, (१७) वेदान्त विज्ञान,
(१८) गीतामृत (प्रामाण तात्पर्य टीका), (१९) योग सिद्धि,
(२०) पराशान्ति, (२१) अद्वैत सर्वस्व, (२२) ज्ञाननिष्पत्ति,
(२३) वेदको कर्मकाण्ड र ज्ञानकाण्ड, (२४) गीताको भूमिका,
(२५) सुषुप्ति र सृष्टि, (२६) रूरुक्षेत्र र साक्षात्कार,
(२७) मोक्षको अनन्य मार्ग, (२८) चतुःसूत्री, (२९) आत्म मनन,
(३०) लघु वेदान्तत्रय, (३१) अद्वैत चिन्तामृत, (३२) जीवन्मुक्ति सिद्धि,
(३३) आत्मानुसन्धान, (३४) ईश्वर निरूपण, (३५) सूत्र प्रस्थान,
(३६) ब्रह्म गीता, (३७) जगत भ्रम निरसन, (३८) वशिष्ठ गीता,
(३९) साक्षात्कार रहस्यको विवेचन, (४०) विचारालोक,
(४१) गीता गूढार्थ दीपिका, (४२) शंकर जीवनी, (४३) भक्ति शिक्षा,
(४४) नैतिक शिक्षा, (४५) सुभाषित रत्न, (४६) गीता परिचय,
(४७) संयुक्त अक्षर परिचय, (४८) गीता सार, (४९) अच्य
(५०) श्रुति विज्ञान, (५१) चित्तविश्रान्ति, (५२) सा
(५३) नारायणप्रसाद, (५४) मोक्षोपाय गुरु चन्द्रिका, (५५) व
(५६) शांकर वाशिष्ठ वेदान्त रहस्य, (५७) कर्म र भक्ति (५८
(५९) मोक्षोपाय लघुचन्द्रिका, (६०) कर्मसंन्यास
(६१) उपदेश संग्रह, (६२) परमार्थ पत्रावलि, (६३) गीता
(६४) हरिस्तोत्र, (६५) योगवाशिष्ठ प्रश्नोत्तरी, (६६) विश्व
(६७) परमार्थ प्रश्नोत्तरी, (६८) ज्ञानाज्ञान, (६९) सवा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu